रास-रस

प्रवक्ता:- अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती

कलनकर्त्री - श्रीमती सतीशबाला महेन्द्र लाल जेठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रास-रस

प्रवचन :

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलन :

श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
विपुल, २८/१६ बी. जी. खेरमार्ग
बम्बई ४००००६
फोन : ८१२७९७६

●

प्रथम संस्करण ३०००
मूल्य : ६.००, छह रुपये मात्र

●

संवत् २०४१ वि०
दीपावली, कार्तिक कृष्ण अमावस्या
२४ अक्टूबर, १९८४ ई०

●

मुद्रक :
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस,
सीके० ३६/२० ढुण्ढिराज
वाराणसी—१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाराजश्रीको माल्यार्पण करते हुए श्रीमाखनलाल जी बागड़ोदिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रसो वै सः

मुझे स्मरण है कि मैंने 'रास पञ्चाध्यायी' पर कभी लगातार एक वर्ष तक प्रवचन किया है। प्रसंग पूरा नहीं हुआ था। अब केवल पाँच दिनके प्रवचनमें मैंने क्या कहा होगा यह सोचकर आश्चर्य होता है। फिर भी श्रीमाखनलाल बागड़ोदियाकी भावुकता एवं श्रद्धा-भक्ति ही इसका कारण हो सकती है। भगवान् करें उनकी भावना बढ़ती रहे और वे भगवद्-भक्तिके मार्गपर आगे बढ़ते रहें। दूसरे प्रवचनोंके संकलनके समान इसका भी लेखन-सम्पादन श्रीमती सतीशबाला महेन्द्रलाल जेठीने किया है।

१ सितम्बर १९८४ —अखण्डानन्द सरस्वती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक

भगवान् धर्मकी रक्षा करते हैं अपने सत् अंशकी प्रधानतासे। ज्ञान-परम्पराकी रक्षा करते हैं अपने चित् अंशकी प्रधानतासे और आनन्दांशका विस्तार करते हैं रासलीला आदिसे। भगवान्‌में सत् है, चित् है, आनन्द है, सच्चिदानन्द हैं भगवान्। और अद्वितीय तत्त्व हैं। इसलिए उनमें कर्ता-कर्मका भेद धर्ममें नहीं है, ज्ञाता-ज्ञेयका भेद चित्तमें नहीं है, उपदेशमें नहीं है। और भोक्ता-भोग्यका भेद आनन्दमें नहीं है। सत्, चित्, आनन्द, अद्वितीय—यह भगवान्‌का स्वरूप है। अवतारोंमें भी धर्मकी प्रधानतासे रामावतार, ज्ञानकी प्रधानतासे कपिलावतार, दत्तात्रयावतार और आनन्दकी प्रधानतासे श्रीकृष्णावतार है। खास करके वृन्दावनमें, व्रजकी लीलामें, वृन्दावनमें आनन्द-रसका प्राकट्य हुआ है। उनमें भी आनन्द-रसकी अभिव्यक्तिके लिए सख्यरस है जिसमें गोप, ग्वाल-बाल श्रीकृष्णसे प्रेम करते हैं। प्रेमसे ही प्रेमका उदय होता है। प्रेममें आलम्बन विभाव हैं सखा और श्रीकृष्ण और उद्दीपन-विभाव है उनका परस्पर प्रेम। माताका वात्सल्य है, वत्सल रस है वहाँ। वात्सल्यमें कोई कामना नहीं, केवल प्रेम है। मैय्याका प्रेम कृष्णसे, कृष्णका प्रेम मैय्यासे। और, कान्तारस, मधुररस देखते हैं गोपियोंसे। यह रसास्वादनकी प्रणाली है। क्योंकि सत्तामें अन्ततोगत्वा समाधि लग जाती है, विक्षेप नहीं होता और ज्ञानमें विक्षेप रहे कि न रहे, इसकी कोई परवाह नहीं रहती, मन चाहे चञ्चल हो, चाहे स्थिर हो, ज्ञान एकरस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहता है। आनन्दमें समाधि नहीं है, और आनन्दमें विक्षेपकी कोई परवाह भी नहीं है। मस्ती है! बाजे बज रहे हैं, गा रहे हैं, नाच रहे हैं, अभिनय कर रहे हैं और अपने हृदयमें आत्माका जो आनन्द है वह प्रकट हो रहा है। बात यह है कि बाजे जो हैं वे बाहर बजते हैं और नृत्य शरीरके सञ्चालनसे होता है, अभिनय चेष्टासे होता है और सगीत अपने रसको प्रकट करनेके लिए वाणीका आलम्बन लेता है। यह जो भगवान्की रासलीला है यह रस-रूप है। उपनिषदोंमें कहा - **रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।** रस ही भगवान्का स्वरूप है और हमारा मन रसकी ओर ही ज्यादा आकृष्ट होता है। आचरण और समाधिके लिए सत् पर्याप्त है। ज्ञान और निर्द्वन्द्वताके लिए चित् पर्याप्त है परन्तु बिना आनन्दके हमारा मन कहीं लगता नहीं है। भगवान्ने लोगोंका मन अपनी ओर खींचनेके लिए यह आनन्द-रसकी लीला रची। श्रीमद्भागवतमें बताया, श्रीधर स्वामीने टीका की कि जो अत्यन्त विषयी पुरुष हैं, उनको भी अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए और जो निर्द्वन्द्व जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, जिनका लोकमें कोई कर्त्तव्य नहीं है, उनके मनको भी अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए भगवान्ने यह लीला की। लीला शब्दका अर्थ है—संस्कृतमें आश्लेष, आलिङ्गनका दान करे। भगवान् जैसे अपनी छातीसे लगा लें, अपने हृदयसे लगा रहे हों इस तरहकी लीला। जो केवल भगवान्को ही चाहते हैं उनके लिए। धन चाहना दूसरी चीज है, विद्या चाहना दूसरी बात है, बुद्धि चाहना दूसरी बात है, समाधि चाहना दूसरी बात है, लेकिन जो भगवान्के हृदयसे लगकर भगवान्से एक हो जाना चाहते हैं जो भगवत्प्रेम चाहते हैं। अर्थ चाहना दूसरी बात, भोग चाहना दूसरी बात, धर्म चाहना दूसरी बात, मोक्ष चाहना दूसरी बात; जो केवल भगवत्-रसका आस्वादन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके भगवन्मय हो जाना चाहते हैं उनके लिए भगवान्‌ने यह रासलीला प्रकट की।

रस एव रासः। रसानां समूहो रासः।

रास माने एक प्रकारका नृत्य, जिसका भरत मुनिने वर्णन किया है। नृत्योंमें इसको हल्लीसक नृत्य बोलते हैं। नाट्यशास्त्रमें इसका स्वरूप यह है कि नट तो हो एक और नटी हों बहुत-सी, परन्तु बीचमें स्थित जो नट है, यह इतनी स्फूर्तिसे नृत्य करें कि सौ-सौ नटियोंको ऐसा मालूम पड़े कि मेरी ही ओर देख रहा है, मेरे ही साथ नृत्य कर रहा है। हल्लीसक-नृत्य इसको नाट्य-शास्त्रमें बोलते हैं। ऐसा समझें कि जैसे आपके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं और चारों ओर वृत्ति-रूप जो नटी हैं वे नृत्य कर रही हैं। केन्द्रमें श्रीकृष्ण हैं और वृत्तमें नटी हैं, गोपियाँ हैं। **अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो।** बीचमें खड़े होकर बाँसुरी बजा रहे हैं श्रीकृष्ण और इतनी जल्दी, इतनी त्वरासे, इतनी फुर्तीसे वे घूमते हैं कि प्रत्येक गोपी देखती है, कि मेरी आँखसे आँख मिल रही है, मुझे देखकर मुस्कुरा रहे हैं और मैं जो चारों ओर इनके घूम रही हूं उसमें ये मेरे साथ ही, मुझे देखते हुए ही घूम रहे हैं। फिर, दूसरा नृत्य यह है कि प्रत्येक दो गोपियोंके बीचमें एक श्रीकृष्ण हैं, प्रत्येक गोपीके बाद श्रीकृष्ण नहीं हैं, दो गोपी एक साथ और उनके बाद एक कृष्ण फिर दो गोपी फिर कृष्ण। तो प्रत्येक गोपीके कन्धेपर श्रीकृष्णका हाथ आता है एक ओरसे। नृत्य करते-करते वह परिस्थिति आती है जब गोपियाँ अपनेको भूल जाती हैं और जब भूल जाती हैं, तब प्रत्येक गोपीके साथ श्रीकृष्ण हो जाते हैं। एक गोपी एक कृष्ण, एक गोपी एक कृष्ण। तो तीन प्रकारकी रासलीला हुई—एक कृष्ण अनेक गोपी, दो-दो गोपीके बीचमें एक-एक कृष्ण और प्रत्येक गोपीके बाद एक कृष्ण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप अपने मनको वहाँ ले चलिये; जहाँ यमुनाजी मन्द मन्थर गतिसे बह रही हैं, जहाँ श्रीगिरिराज सिर उठाये खड़े हैं, जहाँ हरे-हरे वृक्षकी पंक्तियाँ हैं, जहाँ लताएँ खिल-खिलके अपने पुष्पोंके रूपमें मुस्कुरा रही हैं, जहाँ पशु-पक्षी भी शान्त समाधिस्थ-से होकरके इस लीलाका दर्शन कर रहे हैं और भगवान् श्रीकृष्ण इन गोपियोंके बीचमें मोर-मुकुट धारण किये हुए, केसरका तिलक लगाये हुए, कानोंमें कुण्डल, भौंहें मटकाते हुए, तिरछी चितवनसे देखते हुए, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए कानोंके कुण्डल जैसे कपोलों पर नाच रहे हों, पीताम्बर फहरा रहा हो, पाँवोंके नूपुर, हाथके कंगन, कमरकी करधनी रुनझुन-रुनझुन बज रही हो और गोपियों-के साथ रास-विलास कर रहे हों। आप इसको देखें प्रेमसे। किसीको प्यास लगे बीचमें तो पानी दे दीजिये पीनेको, किसीके घुंघरू टूट जायें तो उनको समेट लीजिये, पंखेकी आवश्यकता हो तो पंखा कीजिये, तबला बजाइये, झाँझ बजाइये, सारंगी बजाइये, और कभी बेसुध होकर आप भी नृत्य करने लगिये। यह कोई मनोरञ्जनकी लीला नहीं है, यह हम अपने हृदयमें जब निदिध्यासन करते हैं, एक वृत्ति एक चैतन्य, एक वृत्ति एक चैतन्य। सम्पूर्ण वृत्तियोंकी सन्धिमें चैतन्य, उनके साक्षीके रूपमें चैतन्य और वृत्तियाँ भी चैतन्यकी विवर्तरूपा उससे अभिन्न। यह एक बहुत गम्भीर और बहुत प्रसन्न थिरकता हुआ, नृत्य करता हुआ ज्ञान है। रासलीला वह वस्तु है जो ज्ञान, आनन्दो-ल्लाससे नृत्य कर रहा है। यह कोई स्त्री-पुरुषकी कामकी लीला नहीं है, यह कोई भोगलीला नहीं है, यह अद्भुत चैतन्यमयी, रसमयी, मधुमयी, लास्यमयी अलौकिक लीला है, जो लोगोंकी मनोवृत्तिको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए भगवान्ने, अथवा लोगोंकी वृत्ति भगवानमें लगानेके लिए महात्माओंने इसको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकट किया है। श्रीधर स्वामीने तो इसको काम-विजयके नामसे—

तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम् । किंच श्रृङ्गारकथापदेशेन विशेषतो निवृत्ति-परेयं पञ्चाध्यायीति व्यक्तोकरिष्यामः ।।

वस्तुतः यह रास-पञ्चध्यायी चित्तको संसारके विषयोंसे निवृत करके भगवान्‌में लगानेके लिए है । श्रीवल्लभाचार्य, श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे महापुरुष कहते हैं—'प्रपंच-विस्मारणद्वारा स्वास-क्त्युत्पादनार्थम्' । वैसे चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्यमें बहुत मतभेद हैं । भगवान् ही दोंनोंसे दो तरहकी बात करते हैं, गड़बड़ा देते हैं, बड़े नटखट हैं । लेकिन इस विषयमें दोनों एक ही बात कहते हैं कि यह दुनियाका प्रपञ्च भूल जाये, प्रपञ्च विस्मारण द्वारा स्वासक्त्युत्पादानार्थ अपने रूप माधुरीमें,लीलामाधुरीमें,वेणुमाधुरीमें, प्रियामाधुरीमें जो कि अन्यत्र कहीं है ही नहीं, केवल श्रीकृष्णमें ही ये चार बातें—रूपकी माधुरी, लीलाकी माधुरी, वेणुकी माधुरी और प्रियाकी माधुरी-इन चारों माधुरियोंके द्वारा जीवोंको संसारमें-से निकालकर, संसार भुलाकर अपने-आपमें लगानेके लिए भगवान् यह लीला करते हैं। श्रीधर स्वामीने भूमिका बनायी—

ब्रह्मादि जयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।

जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः ।।'

कामने ब्रह्माको जीत लिया, शंकरजी बचे थे, उनको मोहनीके सामने नंगा कर दिया, इन्द्रमें तो कामकी प्रधानता है हीं, इनको जीत लेनेके कारण कामका अभिमान बढ़ गया था कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने ब्रह्माको जीत लिया, शंकरको जीत लिया, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको जीत लिया, उसके अभिमानको तोड़नेके लिए भगवान् श्रीकृष्णने रासलीला की। कामने कहा—महाराज, अब मैंने सबको जीत लिया है, आइये; आपसे दो-दो हाथ हो जाय। कृष्णने कहा कि बेटा, अब बापको ही ललकारने लगे। प्रद्युम्न काम हैं श्रीकृष्ण उसके पिता हैं। अच्छा आओ, हमसे लड़ोगे तो कहाँ? मैदानमें लड़ोगे कि किलेमें? किला तो है सत्सङ्ग। सत्सङ्गके संरक्षणमें काम निर्बल हो जाता है। बोले—अच्छा, मैदानमें लड़ेंगे। मैदानमें कहाँ? जहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ हों, युवती हों, सुन्दरी हों, प्रेमिका हों, वहाँ कामपर विजय प्राप्त कर लेना बहुत कठिन है, क्योंकि कामकी सेना वहाँ पूरी रहती है। तो, शरद् ऋतु है, चमेलीके पुष्प खिले हैं, चाँदनी रात है, शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बह रही है, वहाँ श्रीकृष्णने कामको ललकारनेके लिए कि आजा भाई, अपनी बाँसुरी बजायी। वह वंशीकी ध्वनि, जिसमें श्रीकृष्णपर मुग्ध होकर स्वयं सरस्वती बाँसकी वंशी बन गयी थीं और श्रीकृष्णके आनन्दकी स्वरलहरी, सरस्वती-वाणीसे जब बाँसुरीकी स्वरलहरी निकली—**जातहर्ष उपरम्भति विश्वं** आनन्दमें भरकर श्रीकृष्णने वंशीध्वनिके द्वारा जब सम्पूर्ण विश्वका आलिंगन किया, आकाशमें वंशीध्वनि भर गयी, वायुमें उनके प्राण भर गये, सूर्य-चन्द्रमा ठिठक गये। अपनी-अपनी जगहपर, अग्नि शीतल हो गया। यमुनाका बहना बन्द हो गया। पृथ्वीको रोमांच हो गया। जब सम्पूर्ण विश्व श्रीकृष्णकी उस प्रेममयी वंशी-ध्वनिसे मुग्ध हो गया, उस समय गोपियोंने उनके रसका आस्वादन किया।

वहाँ काम नहीं है, शुद्ध प्रेम है। संस्कृत भाषाका कोई भी शब्द सामान्य रूपसे अपना अर्थ नहीं देता है। जिसका अधिकार जितना ऊँचा होता है, उसको उतना ही अर्थ संस्कृतका ग्रहण होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। दैवी बात है। स्वयं चेतन है यह चिन्मयी भाषा। आप देखो एक 'गोप' शब्द। गोप शब्दका अर्थ होता है गाय चरानेवाला। ठीक है गाय चरानेवाले गोप हैं, श्रीकृष्ण स्वयं गाय चरानेवाले बनकर उनके साथ खेलते हैं। ग्वाले भी गोप हैं और कृष्ण भी गोप हैं। इतना अर्थ तो यहाँ हुआ।

अब गोप शब्द आगे बढ़ा। 'गो' माने वाणी और 'प' माने रक्षक। जो वेदवाणीका अध्ययन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, वे विद्वान् ब्राह्मण गोप हैं और उस वेदवाणीके अर्थके रूपमें जो हमेशा उनके साथ खेलते रहते हैं, हमलोग शब्दोंसे खेलते हैं। दूसरा अर्थ लिया। तीसरा अर्थ लिया गो माने हमारे चित्तकी वृत्तियाँ। 'गच्छन्ति विषयेषु इति गावा प्रत्यया'-जो इन्द्रिय वृत्तियोंकी रक्षा करे, हमारी आँखको, हमारे कानको, हमारी नाकको, हमारी जीभको विषयोंमें, शब्द-स्पर्श, रूप-रस, गन्धमें जानेसे रोक ले उसका नाम गोप। गोप माने जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जिसकी मनोवृत्तियाँ वशमें हैं, उसका नाम हो गया गोप। जो संयमी पुरुष हैं उनके सामने यह गोपलीला प्रकट होती है। 'गोपायन्ति'—जो श्रीकृष्ण-सम्बन्धी रहस्यको, अनुभवको गुप्त रखें 'गुपु रक्षणे' गुप्त रखते हैं उनका नाम गोप है।

अच्छा, और आगे। 'गोभिः इन्द्रियैः इन्द्रियवृत्तिः पिबन्ति श्रीकृष्ण-रसं'—जो अपनी इन्द्रियोंके द्वारा और इन्द्रियवृत्तियोंके द्वारा श्रीकृष्ण-रसका पान करते हैं, प्रेम-रसका पान करते हैं उनका नाम गोप। इसीसे जो लोग दावा करते हैं कि हमने वेद-मन्त्रोंका अनुवाद कर लिया, हमने संस्कृतको भाषामें लाकर रख दिया, वे कभी अनुवाद नहीं कर सकते हैं। क्योंकि जैसे-जैसे हम अन्तर्मुख होते जायेंगे, जितना-जितना भगवान्‌के पास पहुँचेंगे, उतना ही यह शब्द अधिकारके अनुसार अधिकारी पुरुषको, योग्य पुरुषको अपना अर्थ समर्पित करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो गोपी माने क्या ? जो कानसे भी श्रीकृष्णको सुनती हैं, जो त्वचासे कृष्णको ही छूती हैं, जो नेत्रसे श्रीकृष्णको ही देखती हैं, जो जीभसे श्रीकृष्ण-रसका ही पान करती हैं, जो नासिकासे श्रीकृष्णको ही सूँघती हैं, सारी इन्द्रियोंके द्वारा जो श्रीकृष्णका अनुभव करती हैं, उसका नाम होता है गोपी। यह कमर हिलाके, आँख मटकाके, हाथसे हाव-भाव करके, यह जो काम-मुद्राओंका प्रदर्शन है यह रसिया हो गया, यह ढोल हो गया, यह आल्हा हो गया, यह जो गाँवकी गँवारू लीलामें स्त्री-पुरुषोंकी काम-चेष्टाओंके समान भाषामें और वैसी-वैसी चेष्टा करके दिखाया जाता है, श्रीकृष्ण-लीलाका वह बहुत बहिरंग, बाहरी और एक गँवारू रूप है। श्रीकृष्णकी लीला एक बहुत गम्भीर रहस्य है वह सच्चिदानन्दघन अद्वय परमात्माका स्पन्दन है। स्पन्द ईषत् चलने। उस स्पन्दमें रसका निस्यन्द है। उस रसके निस्यन्दको ही रासलीलाके नामसे कहा जाता है। गोपी पीती है परमानन्द-रसको। वह भोग्य हो गया कि नहीं ? वह पीता है गोपी-रसको। तो कौन भोक्ता, कौन भोग्य ?

अब हम आपको रासलीलाके सम्बन्धमें कुछ थोड़ी-सी बात सुनाते हैं। गोपी रोज श्रीकृष्णको आते-जाते, सायं-प्रातः देखती है—

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धवन्य - प्रसूनरुचिरेक्षण-चारुहासम्। वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसार-घमक्षिभृङ्गैस्तापं व्रजहुर्विरजं व्रजयोषितोऽह्नि। तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्।

—१०-१६, ४२-४३

श्रीकृष्ण सायंकाल गोचारण करके लौट रहे हैं, आगे-आगे गौएँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चल रही हैं, वीचमें श्रीकृष्ण हैं, पीछे ग्वाल-बाल हैं, एक दृष्टि-डालें—'तं गोरजश्छुरितकुन्तल' गायोंके खुरसे उड़-उड़कर धूल श्रीकृष्णके बालपर और अङ्गपर पड़ी है। कितना परिश्रम किया है गायोंके चरानेमें दिनमें, वह धूलसे इसकी सूचना मिलती है। काले-काले बाल, साँवरा शरीर, उसपर झीनी-झीनी धूलकी सफेद परत पड़ी हुई है। आप एक बार देखें उसको। हम आपको कोई किस्सा कहानी नहीं सुनाते हैं। आप अपने मनकी आँखसे उसको देखिये। आपका मन चले वहाँ, वृन्दावनमें।

लटकि लटकि मन-मोहन आवनि।
झूमि-झूमि पग धरत भूमि पर, गति मातंग लजावनि॥

इस सखाकी ओर लटकते हैं, उस सखाकी ओर लटकते हैं, दाहिने-बायें, मण्डलाकार नृत्य करते हैं, ऊपर झरोखे-से झाँकती हुई गोपियोंको देखते हैं, रास्तेमें खड़ी हुई गोपियोंकी ओर देखते हैं, आ रहे हैं, आगे बढ़ते जा रहे हैं, गायोंके पीछे। गौएँ भी आगे बढ़ती हैं, परन्तु अपना मुँह घुमा-घुमाकर उन्हींको देखती हैं। रास्ता बहुत लम्बा हो जाता है—

नवघन पर मानो झीनि बदरिया शोभा रस बरसावनि।

जैसे नवीन रसवर्षी मेघ छा रहा हो आकाशमें और पतली-पतली सफेद बदलियाँ नीचेसे उड़कर जा रही हों, एक-एक अंगकी शोभा विलक्षण हो रही है। यह ध्यानकी लीला है। मोरकी पाँख, जो श्रीकृष्णकी बाँसुरीपर नाचते-नाचते अपने पिच्छको गिरा देता है धरती पर, उसको उठाकर लगाते हैं श्रीकृष्ण अपने बालोंमें, वे काले-काले घुँघराले घने महीन और नरम-नरम बाल, उनके ऊपर पड़ी हुई धूलपर वह मयूर पिच्छ, अद्‌भुत लीला है।

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धवन्यप्रसून

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनके फूल लगे हुए हैं, रुचिर चितवन, चारु मुस्कान, वाँसुरी वज रही है। ऐसी बाँसुरी जिसके सामने शान्तानन्द, ब्रह्मानन्द, मोक्षानन्द, सब हल्के पड़ जाते हैं, छोटे पड़ जाते हैं, फीके पड़ जाते हैं। वह वाँसुरी आनन्द-रसधारा उड़ेल रही है और गोपियाँ देख रही हैं, ग्वाल-बाल कीर्तिका गान कर रहे हैं। थोड़ी लज्जा, थोड़ा प्रेम, थोड़ी मुस्कान, लोगोंकी रुचिको अपनी ओर खींच रही है। 'रुचिर' शब्दका अर्थ संस्कृतमें होता है लोगोंकी जो अलग-अलग रुचि लगी हुई है, उसको जो अपनी ओर खींच ले उसका नाम रुचिर है। 'रुचिर राति—आदत्ते। रयि दानादानयोः।'

गोपियोंने देखा अपनी प्यासी आँखोंसे **दिदृक्षितदृशोऽभ्य गमन्समेताः** देखनेकी इच्छा हृदयमें नहीं गयी। कहाँ रही ? कि वह आँखोंमें आगयी, माने इतनी प्रवल हुई कि वह अपना स्थान छोड़कर आँखोंमें आगयी--दिदृक्षितदृदशा। और आगेकी ओरसे गोपियाँ आ रहीं, इकट्ठी गोपियाँ : श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी ऐसी कि जब उनकी वंशीध्वनि सुनायी पड़ती है तो हृदय कानमें आजाता है। जब रुनझुन-रुनझुन उनका नूपुर वजता है, बाँसुरी बजती है तो मन अपने स्थानमें नहीं रहता है, कानमें आजाता है, जब उनकी सुगन्ध आती है तो मन हृदयमें नहीं रहता, नासिकामें आजाता है। जब उनके स्पर्शका अनुभव होता है तो मन त्वचामें आजाता है। जब उनका रूप दीखता है तो मन आँखों में आजाता है। जब जिस इन्द्रियसे श्रीकृष्णका अनुभव होता है, समग्र हृदय अपना गोलक छोड़कर, अपना स्थान छोड़कर उस-उस इन्द्रियमें आजाता है और उन इन्द्रियोंके द्वारा गोपियाँ भगवद्रसका आस्वादन करती हैं। यह महात्माओंकी ऐसी करुणा, या भगवान्का ऐसा प्रेममय स्वरूप, साधारणी-करण हो गया रसका, जो सबसे परे रस है, वह हमारी आँखोंके सामने आकर नाचने लगा। वह हमारे कानमें शब्द होकर, संगीत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होकर प्रवेश करने लगा, वह हमारी त्वचाका स्पर्श करने लगा, वह हमारी नासिकामें सौरभ्य बनकर आने लगा, वह हमारी रसनामें माधुरी-रस बनकर प्रवेश करने लगा, हमारा रोम-रोम उससे पुलकित हो जाता है। गोपियोंने हृदयमें यह निश्चय किया, प्रेम करने योग्य तो यही है। उन्होंने देखा सारी विश्वसृष्टि श्रीकृष्णके प्रेमसे भरपूर है। देवियाँ स्वर्गकी, मुग्ध होकर श्रीकृष्णको देख-देखकर अपना शरीर भूल जाती हैं। उनके फूल और कपड़े भी शरीरपरसे गिर जाते हैं। तालाबोंमें असमय कमल खिल जाते हैं, वृक्षोंसे मधु-क्षरण होने लगता है। पशु घास चरना छोड़कर, मुँहमें आया हुआ घासका ग्रास न उगलते हैं, न निगलते हैं। बछड़े दूध पीते हुए न दूध उगलते हैं, न निगलते हैं। उनके शरीरमें रोमांच है, हृदयमें श्रीकृष्ण हैं, प्रेमसे भरपूर हैं। नदी बहना बन्द कर देती है, पक्षी बोलना बन्द कर देते हैं। पशु जहाँके तहाँ ठिठक जाते हैं। सारी विश्व-सृष्टि श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न है। गोपियोंने देखा-ओह! ये सब श्रीकृष्णसे प्रेम करते हैं और हम उनके प्रेमसे वंचित हैं। व्रत करती हैं। कात्यायनी-पूजा उसका नाम है। लज्जा छूट गयी, गलबहियाँ डालकर गोपियाँ घरसे निकलती हैं, कृष्ण-कृष्ण कृष्ण-कृष्ण माने आकर्षक, प्यारे। कृष्ण माने चुम्बक। काला चुम्बक जो लोहेको खींच लेता है। गोपियाँ कहती हैं हमारा हृदय भले लोहेका बना हो, फौलादका बना हो, कठोरसे कठोर बना हो, परन्तु श्रीकृष्ण चुम्बक हैं। कृष्ण हैं। कर्षति—आकर्षति। वह हमारे हृदयके आकर्षक चुम्बक हैं, अपनी ओर खींच लेंगे! कृष्ण, आओ! कृष्ण और गोपियोंके बीचमें जो पर्दा था, आवरण था, उसको काट दिया। भक्तिमें और ज्ञानमें यही फर्क है। क्या फर्क है? ज्ञानमें जीवको श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा स्वयं अपना आवरण-भङ्ग करना पड़ता है, अपना पर्दा हटाकर, फाड़कर, आवरण-भङ्ग करके ब्रह्मके साथ एक होना होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तिमें स्वयं भगवान्, जीवकी बुद्धिपर जो पर्दा पड़ा है, उसको फाड़ते हैं। उसका नाम होता है चीर-हरण। आवरण-भङ्गकी लीला। यदि माँके पास बच्चा दूध पीनेके लिए आवे और माँ उससे पर्दा करे कि मैं अपनी छाती कैसे खोलूँ? तो बच्चेको दूध नहीं मिलेगा और माँको दूध पिलानेका आनन्द नहीं आयेगा। पति-पत्नी मिलें और बीचमें पर्दा रहे, तो पति-पत्नीका जो रस है, मधुर-रस है, कान्त रस है, वह नहीं मिलता। इसी प्रकार जबतक जीवात्मा और परमात्माके बीचमें कोई पर्दा रहता है तबतक परमात्माके मिलनेका आनन्द नहीं होता। जबतक गुरु और शिष्यके बीचमें कपट रहता है, तबतक शक्तिपात नहीं होता। श्रद्धा अनुग्रहका विवाह न हो तो रसका उदय नहीं होता। इसी प्रकार भक्त और भगवान्, प्रेमिका और प्रियतम—इनके बीचमें जो पर्दा होता है, उसे भक्ति फाड़ देती है। भक्ति और प्रेमकी यह परिपाटी है कि उसमें स्वयं प्रियतम, स्वयं भगवान् उस पर्देको फाड़ देते हैं। यह काम भगवान्‌का है। यह चीर-हरण लीला है।

मनोरथ पूरा हुआ। इसके बाद भक्तका कुछ भी कर्तव्य नहीं है। ब्राह्मणोंको अनुकूल बनाया श्रीकृष्णने। उनकी पत्नियोंको मोह लिया। देवताओंको अनुकूल बनाया श्रीकृष्णने। इन्द्रका मान भङ्ग कर दिया। कह दिया—देवता लोग! तुम रहो स्वर्गमें, हमारा देवता तो इस धरतीपर है। यह वृन्दावनकी भूमि है, यह वृन्दावनका पाषाण है। हमारा देवता मर्त्यलोकमें रहता है, स्वर्गमें नहीं। देवताओंको स्तब्ध कर दिया, ब्राह्मणोंको स्तब्ध कर दिया। जलके देवता वरुणको मोह लिया। और तब उन्होंने बाँसुरी बजायी—

रुन्धन्नम्बुभृतः चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णन् ।
भिन्दन् अण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः ॥

वह बाँसुरी बजी। ऐसी बाँसुरी बजी, बादल ठिठक गये आकाशमें, तुम्बरु सीत्कार करने लगे। सनकादिका ध्यान टूट गया, ब्रह्माजी आश्चर्यचकित हो गये, पातालमें बलि उत्सुक हो गये। यह ध्वनि कहाँसे आ रही है? शेषनागपर खुमारी चढ़ गयी, अण्डकटाहका भेदन हो गया, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड वंशीध्वनिसे भर गये, ऐसी व्यापक वंशीध्वनि, जो सबको अपना ओर आकृष्ट कर ले, ऐसी बाँसुरी श्रीकृष्णने बजायी। उनकी रसमयी, इस मधुमयी, इस चिन्मयी-आनन्दमयी, इस लास्यमयी लीलाने सम्पूर्ण विश्वको अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वंशी बजी और गोपियाँ समग्र प्रपंचको छोड़कर कर्तव्यपालन जो कर रही थीं, उसको छोड़कर, जो दया-मया कर रही थीं उसको छोड़कर, अपने शरीरका ध्यान छोड़कर अर्थ, धर्म, काम मोक्षका विचार छोड़कर और दौड़ पड़ीं श्रीकृष्णकी ओर तब वहाँ श्रीकृष्णने रोका। श्रीकृष्ण और गोपियोंका शास्त्रार्थ हुआ। श्रीकृष्णने कहा—धर्म मुख्य है। यह पूर्वमीमांसाका पक्ष है। गोपियोंने कहा नहीं, उत्तर-मीमांसाका पक्ष ठीक है—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ।

हम तो प्रेम-संन्यासिनी होकर तुम्हारे पास आयी हैं। हमारे लिए तुम्हारा उपदेश नहीं। श्रीकृष्णने कहा--नहीं, मनुष्यको अपने धर्मका पालन करना चाहिए। गोपियोंने कहा-वैराग्य हो जानेपर संसारसे त्याग करना चाहिए।

अब इस संवाद की चर्चा आपको कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः ! शान्तिः !

—*—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो

थोड़ी-सी बात पहले रासके मूल रसके सम्बन्धमें सुनाते हैं। वैसे यह शब्द 'रास' बहुत व्यापक है। र और ल में तो कोई भेद नहीं होता इसलिए रास ही लास्य, नृत्य और ल और ड में कोई अन्तर नहीं होता, इसलिए रास ही डांस है। इस रसका अनुभव कैसे होता है, इसके सम्बन्धमें जो साहित्यके मर्मज्ञ हैं, उनमें चार मत हैं, अवान्तर मत हैं। एक मत यह है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पहले व्रजभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ, श्रीराधा-रानी और उनकी अंशभूता गोपियाँ प्रकट हुईं, उनमें कुछ नित्यसिद्ध थीं, कुछ साधनसिद्ध थीं, कुछ कृपासिद्ध थीं, गोपियोंके बहुत भेद होते हैं। उनमें भी कोई अज्ञात-यौवना थी, कोई मुग्धा थी, कोई प्रौढ़ा थो, कोई परकीया थी, कोई कुमारी थी। और अब हम जब सुनते हैं रासके बारेमें या देखते हैं रासलीला होते हुए तो हमारी मनोवृत्ति उस पाँच हजार वरस पहले हुई रासके साथ एक हो जाता है। और उस परोक्ष रासलीलको हम अपने मनमें, जो पहले कभी हुई थी, उसका स्मरण करके उस परोक्ष रासका रस लेते हैं। कहीं-कहीं श्रीमद्भागवत पढ़नेसे ऐसा भी लगता है कि सचमुच न कृष्ण जवान थे, न गोपियाँ जवान थीं। ग्यारह बरससे कम उम्रके श्रीकृष्ण थे और गोपियाँ तो और छोटी थीं। सात बरसकी उम्रमें उन्होंने गिरिराज गोवर्द्धनको उठाया था और आठ-नौ बरसकी उम्रमें यह रास-लीला हुई थी। तो वह तो आजकल जैसे गाँवमें या शहरमें बच्चोंको सजा देते हैं युवती और युवाके रूपमें और वे आपसमें जो संवाद करते हैं, जो चेष्टा करते हैं या लीला करते हैं, ऐसा ही रास उस समय भी हुआ था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णन उनका इस ढंगसे है जैसे युवा-युवतियोंकी लीला हो। तो जो लोग रासपर आक्षेप करते हैं, उनको यह जानकर सन्तोष होना चाहिए कि यह ग्यारह बरससे कम उम्रके लड़के और लड़कियोंकी एक प्रकारकी अनुकरण-लीला है।

एकादशसमा स्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्।

श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें यह बात बहुत स्पष्ट रूपसे कही हुई है। पर जब हम उस लीलाका चिन्तन करते हैं, तो वह लीला चाहे वास्तविक हो, चाहे अनुकरण हो, वर्णन तो उसका ठीक वैसा ही होगा जैसा युवा और युवतियोंकी लीलाका किया जाता है। तो हमारा मन उस परोक्षमें कहीं लीलासे जाकर एक हो जाता है और हमारे अनुमानसे इस समय जो उनमें रसकी सिद्धि होती है, उसका हम अनुमानके द्वारा रसास्वादन करते हैं।

दूसरी प्रणाली यह है कि नहीं, श्रवण करनेपर और दर्शन करनेपर श्रव्य और दृश्य दोनों ही काव्योंमें जो रासलीलाका वर्णन है, वह प्रत्यक्ष हमारी आँखोंके सामने प्रकट हो जाता है और हम उसका रसास्वादन करते हैं।

पहला मत जो साहित्यिकोंमें नैयायिक हैं उनका है और दूसरा मत जो साहित्यिकोंमें मीमांसक हैं उनका है। तीसरा मत है अभिनवगुप्तका, कश्मीरी शैव। वे कहते हैं कि पहले लीला हुई कि नहीं, इससे कोई मतलब नहीं, जब हम उस लीलाका श्रवण या दर्शन करते हैं तो हमारा मन ही वृन्दावन बन जाता है, उसमें यमुना बहने लगती है, उसमें कदम्ब-कुञ्ज आजाता है। हमारा मन ही श्रीकृष्ण बनके, गोपी बनके, हमारे हृदयके वृन्दावनमें रास करने लगता है और हम उससे थोड़ी देरके लिए तादात्म्यापन्न हो जाते हैं, अपरोक्ष रूपसे रसका दर्शन होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो पहली परिपाटी है परोक्ष रसकी—नैयायिकोंकी, दूसरी पारिपाटी है मीमांसकोंकी—प्रत्यक्ष रसकी और तीसरी परिपाटी है हमारे भरतमुनि—नाट्यशास्त्रके व्याख्याता अभिनवगुप्तकी। चौथी प्रणाली वेदान्तियोंको है और वह प्रणाली है कि जव स्थायी भावावच्छिन्न चैतन्य आलम्बन भावावच्छिन्न चैतन्यसे एकताको प्राप्त हो जाता है, तो हम ही कृष्ण, हम ही राधा, हम ही गोपी, हम ही वृन्दावन। हम अपनेको ही अनेक प्रकारका करके अपना ही रस अनुभव करते हैं, वह आत्मरस है। मधुसूदन सरस्वतीने भक्तिरसायानमें इस रसका वढ़िया प्रतिपादन किया है। वृन्दावनी लोग कहते हैं, मुख्य रूपसे रूप गोस्वामी इस रसका निरूपण करते हैं, भक्तिरसामृतसिन्धुमें। उनसे भी पहले महाकवि कर्णपूरने अलङ्कार-कौस्तुभमें प्रेमरसकी स्थापाना की है। प्रेम एक स्वतन्त्र रस है। भवभूतिने जहाँ करुणारसकी स्थापना की—

एको रसः करुण एव।

भोजदेवने जहाँ शृङ्गाररसकी स्थापना की—

शृङ्गारमेव रसनाद्रसनाम्ना

वहाँ श्रीरूप गोस्वामीजीने भक्तिरसकी स्थापना की और उसके पाँच भेद माने—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार। मधुसूदन सरस्वतीने तो पहलेके साहित्यिकोंको बहुत डाँटा है कि तुम लोग रौद्रको रस मानते हो, बीभत्सको रस मानते हो, भयानकको रस मानते हो, उसमें तो तुमको रसकी सामग्री मिल जाती है, लेकिन यह जो भगवद्भक्ति है, इसमें रसकी सामग्री नहीं मिलती है? इसमें संचारी नहीं है? इसमें व्यभिचारी नहीं है? इसमें सात्त्विक नहीं है? और क्या इसमें उद्दीपन विभाव, आलम्बन विभाव नहीं है? क्या स्थायी भाव नहीं है? तब तुम लोग भक्तिको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रस क्यों नहीं मानते हो ? यह एक रसनीय-आस्वादनीय वस्तु है। अब भक्तोंकी विशेषता यह है कि वे मानते हैं कि भगवान् ऐसे हैं कि जब वे मैय्याकी गोदमें खेलते हैं तो छोटे-से बनके, बालक बनके, बघनहा पहनके रक्षातिलक लगाके प्रकट हो जाते हैं और मैया उनसे प्रेम करती है, ग्वाल-बालोंके साथ सखा हो जाते हैं और गोपियोंके साथ वे जवान होकर प्रकट होते हैं। यह भगवान्‌की विशेषता है वैसे सब बालक हैं, गोपी भी बालक हैं, कृष्ण भी बालक हैं। परन्तु जब रासका प्रसंग आता है, तब उनकी जो अचिन्त्य अनन्त कल्याण-गुणमयी जो लीला है वह लोगोंको अपनी ओर खींचनेके लिए श्रीकृष्णका जो धर्मीरूप है किशोर और गोपियोंका धर्मीरूप जो है किशोरी, वह किशोरी-किशोरका धर्मीरूप उनमें प्रकट हो जाता है और भगवान्‌के साथ लीला करते हैं।

अब एक बात और है कि बाबूलोग जो हैं आधुनिक, वे आधुनिक दृष्टिवाले आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, दूसरे नवीन विचार-वाले, वे रासलीलाको पसन्द नहीं करते हैं। वे तो कहते हैं कि किसीने पीछेसे भागवतमें प्रक्षिप्त कर दी है। इसका कारण यह है कि जैसे गीतामें संन्यासका प्रतिपादन है, लोकमान्य तिलकको पसन्द नहीं है या गाँधीजीको पसन्द नहीं है या विनोबाको पसन्द नहीं है, क्योंकि वे लोग कर्मयोगी हैं। वे संन्यासयोगको पसन्द नहीं करते। वहींसे यह मनोवृत्ति आयी कि यह गोपियोंकी जो लीला है—रासलीला, यह संन्यासलीला है। उत्तरमीमांसा है इसमें। श्रीकृष्ण पूर्वमीमांसाके पक्षमें हैं कि धर्म ही धर्म जीवनमें होना चाहिए और गोपियाँ उत्तरमीमांसाके पक्षमें हैं कि जब भगवान्‌से प्रेम हो जाय, प्रपंचसे वैराग्य हो जाय, तो संसारका परित्याग करके केवल भगवद्-रसमें ही मग्न हो जाना चाहिए। तो 'वस्तुतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्तिपरेयं रासपञ्चाध्ययायी' वस्तुतः रासपञ्चाध्यायीमें निवृत्तिलीलाका वर्णन है। सब कुछ छोड़ करके गोपियाँ श्रीकृष्णके पास पहुँच जाती हैं और दोनोंमें संवाद होता है। श्रीकृष्ण कहते हैं घर-गृहस्थीमें रहना ठीक है और घर-गृहस्थीके धर्मका पालन करना ठीक है और गोपियाँ कहती हैं कि नहीं, भगवानन्से प्रेम करना ठीक है और निवृत्तिपरायण रहना ठीक है। इस वाद-विवादमें श्रीकृष्णको हार जाना पड़ता है और पूर्वमीमांसा हमेशा उत्तर-मीमांसाके सामने हारती रही है। इसमें एक रहस्य यह है कि जो हराता है उससे प्रेम नहीं होता, जो हारता है उससे प्रेम होता है। प्रेमकी जो यह रसधारा है, प्रेमकी जो गंगा है, वह जैसे हिमालयसे समतल भूमिकी ओर प्रवाहित होती है, वैसे अभिमानी पुरुषके जीवनमें या जो उच्च शिखरकी ओर बैठा है उसकी ओर प्रेमकी रसधारा, प्रेमकी गङ्गा नहीं जाती, जो नीचे होता है जो सिर झुकाता है, जो हार मान लेता है उसके प्रति सहानुभूति और प्रीतिका उदय होता है। गोपियोंके सामने जब श्रीकृष्ण हार गये, ऐसा उनको पूर्वपक्ष बनाया गोपियोंने—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥

१०-२९-३१

स्पष्ट रूपसे उत्तर मीमांसा है—भजते मुमुक्षून्। मैवं मैवं, जो तुम कह रहे हो श्रीकृष्ण, वह सब अशुद्ध है, गलत है, असंगत है। हमलोग संसारका त्याग करके 'सन्त्यज्य सर्वविषयाँस्तव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पादमूलम् भक्ताः' संसारके सम्पूर्ण विषयोंका परित्याग करके तब तुम्हारे पास आयी हैं। शुकदेवजी महाराजने गवाही दी कि हाँ हाँ सच है, गोपियोंके हृदयमें कामका लेश भी नहीं है—**तदर्थ-विनिर्वर्तित सर्वकामाः** गोपियोंने श्रीकृष्णके लिए सम्पूर्ण काम-नाओंका परित्याग कर दिया है। तो काम-त्यागिनी हैं गोपियाँ यह तो बोलते हैं शुकदेवजी और हम विषय-त्यागिनी हैं यह बोलती हैं गोपियाँ। यह कोई संसारी लीला नहीं है, दिव्य भगव-त्प्रेमकी निष्काम लीला है। गोपियोंने एक-एक पदमें कहा—

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥

१०-२९-३२

तुम तो आत्मा हो। पतिसे प्रेम आत्मासे प्रेम है, अपत्यसे प्रेम भी आत्मासे प्रेम है, सुहृदोंसे प्रेम भी आत्मासे प्रेम है, संसारमें जितने प्रेम हैं, वे सब आत्माके लिए किये जाते हैं और आत्मासे होता है प्रेम, 'पुत्रात् यो वित्तात्यो अन्यस्मात् सर्वस्मात् प्रेयान्' पुत्रसे भी ज्यादा प्रिय आत्मा है, धनसे भी ज्यादा प्रिय आत्मा है, स्त्री-पतिसे भी ज्यादा प्रिय आत्मा है, तुम आत्मा हो, इसलिए तुमसे हम प्रेम करती हैं तुम सर्वाधिष्ठान हो, स्वयंप्रकाश हो, हमारे आत्मा हो, अद्वितीय ब्रह्म हो, इसलिए जैसे एक संन्यासी सर्वस्वका त्याग करके और अपनी आत्मामें, ब्रह्मरूपतामें निष्ठा रखता है, वैसे हम तुम्हारे साथ रखती हैं।'

गोपियोंने अपनी अनन्यनिष्ठा प्रकट की। यदि तुम हमें नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिलोगे तो हम तुम्हारा ध्यान करते-करते शरीर-त्याग कर देंगी और तुम्हारा स्वरूप ही हो जायेंगी। उन्होंने कहा कि जिस दिन हमने तुम्हारे चरणोंका स्पर्श किया उसी दिनसे दूसरेके सामने खड़ा होनेकी हमारी इच्छा ही नहीं होती।

कृष्णने कहा—अरी गोपियो! तुम हमारे चरणोंमें रहना चाहती हो, तो वहाँ तो भक्तोंकी भीड़ लगी रहती है। हाँ, हम भीड़में रहेंगे। अच्छा वहाँ तो तुलसी सौत रहती है। क्या हुआ, हम भी वहाँ रहेंगे। देखो लक्ष्मी भी तुम्हारे वक्षस्थल पर रहना पसन्द न करके चरणोंमें रहना पसन्द करती है, तो हम गोपियाँ भी सबको छोड़कर तुम्हारे चरणोंमें रहें। तो,—

त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-

तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम्।

१०–२९–३८

हम तुम्हारे सुन्दर मुख, तुम्हारी मुस्कान, तुम्हारी चारु चितवन देख करके मुग्ध हो गयी हैं, हमें अपनी सेवाका अवसर दो। हम तुम्हारी सेवा करना चाहती हैं, हम तुम्हें सुख पहुँचाना चाहती हैं। तो यह **'सर्वापि सैव परं कामो न विद्यते।'** सारी क्रिया वही-की-वही होनेपर भी वल्लभाचार्य जी कहते हैं--कामकी यहाँ गन्ध भी नहीं है। तो वे कहती हैं—

वीक्ष्यालकावृतं मुखं तव कुण्डलश्री-

गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।

दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य

वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः॥

—१०-२९-३९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ये काले-काले घुँघराले बाल तुम्हारे कपोलों पर खेल रहे हैं, कुण्डल जगमग तुम्हारे कपोलोंको स्पर्श कर रही है। अधर-सुधा कपोलोंका स्पर्श कर रही है। यह चितवन और मुस्कान, चितवनका ज्ञान और मुस्कानका आनन्द मिलकर ज्ञान और आनन्दको समन्वित कर रहा है। और तुम्हारा यह वक्षःस्थल जिसपर लक्ष्मी रहती हैं और हमें अभयदान करनेके लिए यह जो तुम्हारे हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ भुजदण्ड हैं, हम तो तुम्हारी सेवामें आगयीं।

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥
—१०-२९-४०

तुम्हारे रूप-माधुरीको देख करके इस तुम्हारे सौन्दर्य-सुधा लहरीका दर्शन करके गायोंको रोमांच होता है, चिड़िया, पक्षी आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। वृक्षोंसे मधुधाराका क्षरण होने लगता हैं, लताएँ मुस्कराने लगती हैं, हरिण बड़ी-बड़ी आँखोंसे तुम्हारी ओर निहारने लगते हैं। जब वृक्षोंकी यह दशा है, पक्षियोंकी यह दशा है, गायोंकी यह दशा है और हरिणोंकी यह दशा है, तो हम तुम्हारी गोपियाँ तुमसे दूर रहें, यह कैसे हो सकता है ?

इतनी विकलता प्रकट की गोपियोंने कि यदि हमें नहीं मिलोगे, तो क्या होगा ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥

—१०-२९-३५

हम ध्यानकी आगमें जल मरेंगी । अब हम लौटकर जानेवाली नहीं हैं । क्या आजतक तुम्हारे चरणोंमें आकर कोई लौटकर गया है ?

अब देखो एक बातपर ध्यान दो । भगवान्‌के सम्बन्धमें जीवकी दो ही स्थिति हो सकती है—या तो वह भगवान्‌के संयोगका अनुभव करे कि वे हमारे हृदयमें हैं, हमारी आँखोंके सामने हैं, हम उनसे हँस रहे हैं, बोल रहे हैं, मिल रहे हैं, खेल रहे हैं, यह अनुभूति हो तो परमानन्दका अनुभव होगा और यदि यह अनुभूति न हो, तो इस अनुभूतिको जगानेके लिए विरहका अनुभव होना चाहिए । विरहमें ऐसी तीव्र व्याकुलता आती है कि अपना हृदय अपनी आसक्तिके स्थानको छोड़ देता है । नहीं तो दुनियाँमें कोई-न-कोई किसी-न-किसीका आशिक होता है, किसी-न-किसीका माशूक होता है । आसक्ति कहीं-न-कहीं संसारके नाम-रूपमें हो जाती है । जबतक भगवान्‌के विरहका अनुभव नहीं होता कि हाय-हाय हम जिसकी अनन्त सत्तासे जीवित हैं, जिसके ज्ञानसे हमें ज्ञान है, जिसके आनन्दसे हमें आनन्द है जिसकी प्रेरणासे हम प्ररित हैं, जिसकी साँसमें हम साँस लेते हैं, जो हमारी आँखोंका तारा है, उसके बिना हम क्षण भर भी जी रहे हैं, बड़े दुःखकी बात है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे तवालोकनमन्तरेण

तुम्हारे दर्शनके बिना यह जो हमारे जीवनका समय बीत रहा है, यह बहुत ही बुरा है

अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि ।

हे प्रभो, आप ही बताओ, यह समय मैं कैसे व्यतीत करूँ ?

हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो
हा नाथ हा रमण हा नयनाभिराम
हा हा कदानुभवितासि पद दृशोर्मे !

'हमारे जीवनमें वह समय कब आवेगा, जब हम अपनी इन्हीं आँखोंसे तुम्हारा दर्शन प्राप्त करेंगे ?'

दर्शनकी संभावना असंभावनापर विचार करना मूर्खताका काम है। प्रभुके दर्शनके लिए जो हृदयकी व्याकुलता है, उसका महत्त्व दर्शनसे भी अधिक है।

प्रणयपटुपिपासापीडितानद्य प्राणान्
कथमपि कथयाऽहं हा कथं सान्त्वयामि ।
असहनिजविकण्ठाः कण्ठमुत्कण्ठयाऽऽप्ता-
ननु तव मुखमिन्दुं द्रष्टुमेते त्वरन्ति ॥

प्रणयकी तीव्र प्याससे हमारे प्राण पीड़ित हो रहे हैं। अब एक क्षण भी मैं इनको कैसे रोकूँ ? अब ये अपनी साँसत सह नहीं सकते, अपनी कुण्ठा सह नहीं सकते, उत्कण्ठासे कण्ठमें आ लगे हैं। तुम्हारे मुखचन्द्रके दर्शनके लिए वे बहुत-बहुत शीघ्रता कर रहे हैं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वरा कर रहे हैं।' तो विरहमें भी दो स्थिति होती है। एक अयोगकी और एक वियोगकी। एक विरह तो ऐसा होता है कि अभी अपने प्यारेसे मिले नहीं हैं और मिलनेके लिए उत्सुक होते हैं और एक विरह ऐसा होता है कि एकबार मिलके फिर बिछुड़ जाते हैं और उसमें ब्याकुलता होती है। विरहके दो भेद हैं—एक अयोग एक वियोग। गोपियोंके जीवनमें दोनों बात देखनेमें आती है। हाँ तो कहना यह है कि ईश्वरसे संयोगका अनुभव करनेवाला ईश्वरमें मिला है ऐसा तो कोई विरला महापुरुष होता है। लेकिन ईश्वरके विरहका अनुभव तो जीवनमें कोई भी कर सकता है। तो विरहात्मक और संयोगात्मक दोनों प्रकारका प्रेम जीवके हृदयमें कैसे उदय हो—यह शिक्षा देनेके लिए; प्रेमकी शिक्षा स्कूल कालेजमें नहीं दी जाती और जो स्वाभाविक प्रेम होता है उसमें कामना वनी रहती है। जो इसी समय हमको प्राप्त है उससे अङ्ग-सङ्गकी इच्छा होती है। उसको देखनेकी, उसको छूनेकी, उससे मिलनेकी और अङ्ग-सङ्ग जो है हमें लौकिक बना देता है। परन्तु जो छिपा हुआ है प्रियतम, उसके प्रति जब मिलनकी लालसा तीव्र होती है तो हम इस देहकी दशाको भूलकर उसे चाहते हैं। यह भूल जाता है और हम मनसा उस प्रियतमसे संयोग और विरहका अनुभव करके उसमें तन्मय हो जाते हैं। यह बात पहले बातायी गयी।

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षोणमङ्गलाः ॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥

१०-२०, १०-११

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब प्रियतमके दुःसह विरहका अनुभव हुआ, ऐसा ताप हुआ उनके हृदयमें, गल गये जन्म-जन्मके मोह-ममताके संस्कार, जल गये संसार-सम्बन्धी विकार, इतना ताप, इतना ताप हुआ गोपीको कि तीनों लोकमें जितने भी जीव हैं उनके जितने भी त्रैकालिक अनादि भूत, अनन्त भविष्य और वर्तमानके पाप थर-थर काँपने लगे कि हम सब मिलकर भी उतना दुःख, उतनी पीड़ा नहीं दे सकते, जितनी पीड़ा इस समय गोपीको हो रही है और जब ध्यानमें उन्हें श्रीकृष्णका अनुभव हुआ, मिलन हुआ तब तीनों लोकके जीवोंके त्रैकालिक पाप अनादि भूत, अनन्त भविष्य, अज्ञात भूत, अज्ञात भविष्य सारेके-सारे जो पुण्य हैं वे इकट्ठे होकर हल्के पड़ गये, फीके पड़ गये। इतना सुख तो हम कभी किसीको दे ही नहीं सकते। तो भगवान्‌के संयोगमें और वियोगमें जो सुख-दुःख है, उसका अनुभव हमारे जीवनमें हो, इसके लिए रासलीलाका वर्णन है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा—

सङ्गमविरहविकल्पे

यदि कोई पूछे कि तुम विरह चाहते हो कि संयोग? तो महाप्रभु कहते हैं कि हमको विरह चाहिए। क्योंकि संयोगमें वह अकेला रहता है और विरहमें तो **सैषा सैषा द्वैतवादः।** साहित्य दर्पणमें कहते हैं कि यह क्या अद्वैत है, 'प्रातादेशा पथि-पथि च स कोयमद्वैतवादः'। क्या अद्वैतवाद है? जहाँ देखो वहाँ अद्वैत, जहाँ देखो वहाँ अद्वैत। तो यह हमारे हृदयमें ईश्वरके संयोगका सुख और ईश्वरके वियोगका दुःख उदय हो और भगवान्‌की संयोगात्मक भक्ति कैसी होती है और वियोगात्मक भक्ति कैसी होती है, इसका उदाहरण उपस्थित करनेके लिए रासका वर्णन है। श्रीकृष्णके लिए गोपियोंके हृदयमें कैसी विकलता है यह जाहिर करना जरूरी था। नहीं तो लोग कैसे मालूम करते?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि श्रीकृष्ण मना न कर देते, भाग जाओ हमारे पाससे— **मा कृद्वं बन्धुसाध्वसम्** तुम्हारे घरके लोग डर रहे हैं, बच्चे रो रहे हैं, पति भूखा बैठा है और तुम यहाँ आगयी हो ? यदि श्रीकृष्ण उनको फटकारते नहीं लौटनेके लिए, तो गोपियोंके हृदयमें कितना प्रेम है यह कभी प्रकट नहीं हो पाता। जब गोपियोंके हृदयका 'पुरुषभूषण देहि दास्यम्'—यह प्रेम प्रकट हो गया, तब श्रीकृष्णने कहा–ठीक है। एक भक्तके हृदयमें मिलनके लिए ऐसी उत्सुकता, ऐसी लालसा, ऐसी उत्कण्ठा, ऐसी व्याकुलता होनी चाहिए जैसी गोपियोंके हृदयमें है। पूरा हुआ अवतारका यह प्रयोजन, जो 'परित्राणाय साधूनां' है। तब—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्॥

१०-२९-४२

जब गोपयोंके हृदयमें कितनी व्याकुलता है यह प्रकट हो गयी, यह नहीं कि श्रीकृष्णको मालूम नहीं था कि गोपियोंके हृदयमें कितना प्रेम है या कितनी विकलता है या कितनी व्याकुलता है, कृष्णको मालूम न रहा हो सो बात नहीं; भगवान् किसीकी परीक्षा नहीं लेते, परीक्षा तो अज्ञानी लेता है। जिसको मालूम नहीं होता है, वह परीक्षा लेके ज्ञान प्राप्त करता है, भगवान् तो सर्वान्तर्यामी हैं, 'चींटीके पाँवमें घुँघरू बाजे वाहूको साईं सुनता है।' सबके हृदयमें कितना प्रेम है, कितना अधिकार है साईंको मालूम है। लेकिन एक भक्तके हृदयमें कितनी व्याकुलता, कितनी पीड़ा होती है, यह लोगोंको मालूम करानेके लिए उसको अभिव्यक्त करनेके लिए, उसका साधारणीकरण करनेके लिए भगवान्ने गोपियोंका यह भाव प्रकट करवा दिया—**इति विक्लवितं तासां**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। योगी तो बहुत हैं जो अपने लिए योग करते हैं। योगेश्वर वे हैं जो बिना योगके ही योगका फल दे सकते हैं। योगेश्वरोंके भी ईश्वर। जहाँ न योग करना पड़ता, न योगका फल देना पड़ता, वे रसात्मक भगवान् श्रीकृष्ण—'आत्मारामोऽपि'—उनको किसीकी कोई जरूरत नहीं है, अपने-आपमें मस्त हैं।

परन्तु हँस पड़े, गोपियो! तुम कितनी अवहित्था करती हो, कितना बनती हो, कितना अपने मनका भाव छिपाती हो, आज सब खुल गया है 'प्रहस्य सदयं'—हृदय दयासे भरा हुआ है।

अब मान-गलित रासका प्रारम्भ करना है इसलिए 'आत्मारामोप्यरीरमत्'। व्रजवासी तो आत्मा शब्दका अर्थ करते हैं राधिका। श्रीहरिदासजीके सम्प्रदायमें, श्रीहरिवंशजीके सम्प्रदायमें, श्रीहरिव्यासदेवजीके सम्प्रदायमें: ये तीन वृन्दावनके मुख्य रसिक हैं—हरिदासी, हरिवंशी और हरिव्यासी। तीनोंको हरि बोलते हैं। वे तो महाराज ऐसा निरूपण करते हैं, कि वह वृन्दावनसे बाहर बोलनेमें भी संकोच होता है। वह तो वृन्दावनकी खास वस्तु है—

मोकों तो भावती ठौर प्यारेके नयनन में
प्यारो भयो चाहे मेरे नैनन के तारे

मुझे प्यारेकी आँखोंमें रहनेकी लालसा बनी रहती है, वही भाती है और प्यारे मेरी आँखोंके तारे बनके रहना चाहते हैं।

जोई जोई प्यारो करे सोई मोहि भावे।
जोई मोहि भावे सोई सोई करे प्यारो॥

जो मुझे भाता है, सो प्यारा करता है और जो प्यारेको भाता है, मुझे भाता है। इस प्रकारका तादात्म्य प्रेमी और प्रियतमका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिपुटी-भङ्ग पूर्वक ऐक्य, इसमें प्रेमी, प्रेम, प्रियतम अलग-अलग नहीं रहते।

तो आत्मा शब्दका अर्थ है राधा! यह बात श्रीकृष्णयामलमें राधा, राधिकाका ही एक नाम आत्मा है। परम प्रेमास्पदको आत्मा कहते हैं और यह आराधिका राधिका, आराधिका ही राधिका है। साराधिका राधिका रा.......... संसिद्धौ। रा......... तोऽपि भगवन्ता। राध्यते रा भगवता। जिसकी आराधना करते हैं भगवान् या जो भगवान्की आराधना करता है। बोले—नहीं, यहाँ यह कह रहे हैं कि जैसे बड़े-बड़े जीवन्मुक्त महापुरुष आत्माराम होते हैं, आत्मरति होते हैं! जैसे ब्रह्म आत्माराम हैं वैसे श्रीकृष्ण भी आत्माराम हैं। उन्हें दूसरे किसीकी इच्छा नही है, आवश्यकता नहीं है। परन्तु वे देखते हैं कि मेरे रहते यह अज्ञानी जीव, विमुख जीव इतना दुःख भोग रहे हैं संसारमें, तो उनको दुःखसे मुक्त करनेके लिए उनको अपने परम मधुर रसका आस्वादन करनेके लिए आत्माराम होनेपर भी अरीरमत्—उनको रमण कराते हैं। अरमत् नहीं है। क्रियापद जो है वह अरमत् नहीं है कि उन्होंने रमण किया। क्रियापद है अरीरमत्—गोपियोंको रमण कराया, गोपियोंको सुखी किया।

अब तो इसके बाद प्रारम्भ हुआ। गोपियोंको लेकर पहले वृन्दावनमें विचरण किया। वृन्दावन माने तुलसीका वन, रागका वन। वृन्दावन माने जिस वृन्दाके लिए विष्णु इतने रागवान् हो जाते हैं कि अपने विष्णुत्वका, धर्मका परित्याग करके भी जिसके साथ विहार करते हैं, उस वृन्दाका यह वन है। तुलसी जो शालग्रामके सिरपर हमेशा रहती हैं उसका वन है, तुलसीवन अहिंस्र वृक्षों का वन है, वृन्दा सखीका वन है, वृन्दा राधाके द्वारा विश्चित वन है, साधुवृन्दकी रक्षा करनेवाला वृन्दावन है। यह वृन्दावन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। यह देखो लता, यह देखो वृक्ष, यह देखो रसमयी, प्रेममयी भूमि, यह देखो आह्लादमयी चन्द्रिका। श्रीकृष्ण गाते हैं, बाँसुरी बजाते हैं। आप जानते ही हैं प्रेमकी बोलीका नाम संगीत है। उसकी शिक्षा नहीं मिलती है। व्रजका एक नन्हा-सा बालक बिना सिखाये गाता है। उसको गाना सिखाना नहीं पड़ता—

जो रस बरस रह्यो बरसाने सो रस बैकुण्ठहुँमें नाहिं।

छोटा-सा बच्चा गा लेता है। प्रेमकी बोलीका नाम संगीत है और प्रेमकी चालका नाम नृत्य है। प्रेममें मग्न होकर चलते हैं। तो अपने-आप ही पाँव इतराते हुए, इठलाते हुए, तालपर पाँव पड़ते हैं और स्वरसे वाणी निकलती है। श्रीकृष्ण कहें देखो चाँदनी, गोपियाँ कहें कृष्ण-कृष्ण, श्रीकृष्ण कहें देखो वन, गोपियाँ कहें कृष्ण, कृष्ण ! कृष्ण कहें देखो जमुनाजी कैसे मन्द-मन्थर गतिसे साँवरी-सलोनी प्यारी-प्यारी बह रही हैं, गोपियाँ कहें कृष्ण, कृष्ण ! कृष्ण कहें कि देखो यह बालुकामय पुलिन, गोपियाँ कहें कृष्ण-कृष्ण ! यमुनाजीने मानो अपने लहरोंके हाथसे उस बालुकामय पुलिनको श्याम-गौर बना दिया है, श्याम-श्याम कृष्ण, गौर-गौर राधिका। अगणित बालूकणोंके रूपमें मानो श्रीकृष्ण और राधिका, वे श्याम-गौर पुलिन बन गये हैं और अनन्त रूपोंमें परस्पर एक दूसरेका आलिंगन कर रहे हैं। वह यमुना तट, वह यमुना पुलिन। लीला होती रही—

बाहुप्रसार - परिम्भकरालकोरू
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाश्चकार ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाहोंको फैलाकर नाचते हैं, हृदयसे लगाकर नाचते हैं, हाथ पकड़कर नाचते हैं, बालूका स्पर्श करके नाचते हैं। नृत्यकी सारी प्रक्रिया प्रकट हो रही है 'उत्तम्भयन् रतिपतिं'। रतिपति-काम आया आकाशमें-से, उसने देखा, स्तब्ध हो गया। जैसे खम्भा जड़ होता है वैसे कामदेव जड़, उत्तम्भयन रतिपतिं—उत उर्ध्वमेव स्तम्भयन्। कामकी हिम्मत नहीं पड़ी कि वह श्रीकृष्णके सामने जाये। तब मूर्च्छित होकरके गिर पड़ा, मूर्च्छित हो गया। भगवान् श्रीकृष्णने ऐसी लीला की।

अब इस लीलामें विघ्न कहाँसे आता है? विघ्न आता है तब, जब सखा कृष्णको छोड़कर वनकी शोभा देखने लगते हैं, जब माता कृष्णको दूध पिलाना छोड़कर गर्म होता हुआ दूध देखने लगती है। माताकी दृष्टि गयी सेवाकी वस्तुपर, सखाओंकी दृष्टि गयी वनकी शोभापर अघासुरके मुँहमें चले गये। परन्तु गोपियोंकी जो दृष्टि है वह दूसरे पर नहीं जाती, न वे वनकी शोभा देखती हैं और न वे दूसरेको देखती हैं! दूसरी गोपीको भी नहीं देखती हैं। उनकी दृष्टि कहाँ गयी? कि यह हमारा सौन्दर्य है, मैं-पर दृष्टि गयी! प्रेममें विघ्न कहाँ है? जहाँ मैं, संसारपर दृष्टि नहीं जाती, यह दूसरा कोई है, यह प्रेममें नहीं आता। प्रेममें भीतरसे मैं निकल आता है। हम इतनी सुन्दर, इतनी मधुर, इतनी सौभाग्यवती कि कृष्ण हमारे ऊपर लट्टू, पीछे-पीछे घूम रहे हैं, अहंका उदय हो गया। अब यह तो प्रेममें बड़ी भारी बाधा है।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

१०-२९-४८

तिरस्कार कर दिया। अहंका तिरस्कार नहीं करेंगे तो प्रेम रसका परिपाक नहीं होगा। प्रेममें तत् बाधक नहीं है, प्रेममें इदं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाधक नहीं है, प्रेममें अहं बाधक है। अन्तरङ्ग है। यदि इदं या तत्, यह या वह बाधक हो, तो प्रेममें व्यभिचार आ जायेगा, प्रेम ही नहीं रहेगा। परन्तु अहंमें प्रीति होनेपर प्रियतमका सुख तो छूट जाता है, परन्तु व्यभिचार नहीं होता। भगवान्‌ने कहा—

'प्रशमाय प्रसादाय'–इनके ऊपर कृपा करनी चाहिए। प्रसन्न, निर्मल हो जाना चाहिए। कैसे? इनके जो अहंभाव उदय हुआ है, उसको शान्त करना आवश्यक है। इसलिए 'तत्रैव अन्तरधीयत'—कहीं गये नहीं। गोपी मस्त होकर मैं कैसा बढ़िया नाचती हूं, मैं कैसा बढ़िया गाती हूं, मैं कितनी सुन्दर हूं, उन्मत्त हो रही थी, उसकी ओढ़नी गिर पड़ी। तो झट श्रीकृष्णने उठा लिया और ओढ़ लिया और वे भी गोपीकी तरह उनके साथ नाचने लगे। अरे उन्होंने देखा कृष्ण कहाँ है, कृष्ण कहाँ है? अब ऐसी आर्तिका उदय हुआ, प्रियतमके बिना प्रेमिका कैसी, प्रेयसी कैसी? व्याकुल हो गये और व्याकुल होनेपर उन्होंने क्या किया, सर्वात्म-भावका वर्णन है।

तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः। १०-३०-२

वृक्षसे पूछें, लतासे पूछें, धरतीसे पूछें, तुलसीसे पूछें, मालतीसे पूछें, कहाँ हैं कृष्ण, कहाँ है कृष्ण और फिर भूल गयीं तो कृष्णकी लीला करने लगीं।

इतनी तन्मयता हो गयी गोपियोंकी कि वे स्वयं—**कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललिताम्** देखो मैं कृष्ण हूं कैसी नाचती हूं। देखो मैं कृष्ण हूं कैसे गोवर्द्धन उठाती हूं। कृष्णकी लीलामें आसक्त होकर गोपीपना ही भूल गयीं, तन्मय हो गयीं, उनकी लीलामें। अब आगेका प्रसंग कल सुनावेंगे।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीन

जिसमें विनय हो, शालीनता हो, प्रेम हो उसीसे प्रेम होता है। गोपियोंने श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए सब कुछ छोड़ा। यह निवृत्ति लीला है। वह तो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, लोक-परलोक सबका परित्याग करके श्रीकृष्णके पास आयीं। और श्रीकृष्णके मना करनेपर भी, उनकी क्रियापर शंका करनेपर भी उन्होंने उत्तर-मीमांसाके आधारपर श्रीकृष्णकी पूर्वमीमांसाका खण्डन कर दिया, उनको पूर्वपक्षी बना दिया। श्रीकृष्ण हार गये और गोपियोंकी बात उन्होंने मान ली। माननेके बाद संगीत प्रारम्भ हुआ, नृत्य प्रारम्भ हुआ। बादमें जो प्रेममें बाधा है, विघ्न है, अभिमान उसका उदय हुआ। जहाँ अभिमानका उदय होता है वहाँ समरसता मिट जाती है! व्रजके प्रेमकी विशेषता यह है कि वहाँ प्रेमको समरस मानते हैं। जितना प्रेम गोपीका है उतना ही प्रेम कृष्णका है, जितना कृष्णका है उतना ही गोपीका है। प्रेमको देखके प्रेम बढ़ता है। प्रेमका उद्दीपन प्रेम ही है, ऐसा हमारे प्रेम-रसके विद्वानोंने माना है। हमारे हृदयमें प्रेम कैसे बढ़े, कि जब मैं सामनेवालेमें प्रेम देखूँ।

एक दिन श्रीराधारानीने देखा कि श्रीकृष्ण कहीं लता-वृक्षकी ओटमें उनको देख-देखके पुलकित हो रहे हैं और वे समझते हैं कि राधारानी हमको देख नहीं रही हैं। श्रीराधारानीकी दृष्टि पड़ गयी, उनका रोम-रोम खिल गया कि श्रीकृष्ण इतने प्रसन्न हो रहे हैं। श्रीकृष्ण समझ गये कि हमको देखकर ये प्रसन्न हो रही हैं, वे और प्रसन्न हुए, तो वे और प्रसम्न हुईं। अब दोनों ओरसे एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुखकी बाढ़ आयी और उसमें दोनों दोनों लोक भूल गये। श्रीकृष्ण अपनेको भूल गये, श्रीराधारानी अपनेको भूल गयीं और दोनों एक हो गये। इसको व्रजवासी रसिक गाते हैं कि—

न आदि न अन्त विलास करें दोऊ
लाल प्रियामें भई न चिन्हारी।

श्रीकृष्ण राधा हो जाते हैं, राधा श्रीकृष्ण हो जाती हैं। प्रेम-रसका एक समुद्र उमड़ता है, एक ओर से राधा तरंगिनी आयी, दूसरी ओरसे श्रीकृष्ण तरङ्ग आया, दोनों आपसमें मिले, दाहिनेका वाँये, वाँयेंका दाहिने हो गया, श्रीकृष्ण राधा, राधा कृष्ण। अब कौन करे 'सर तरङ्गिनी न्यारो ?' अब सरोवर और तरङ्गिणीको कौन अलग कर सकता है ? दोनों एक हो गये। माने दोनोंका व्यक्तित्व भूल गया, प्रेमरस हिलोरें लेने लगा। तो प्रेममें विघ्न जो होता है वह अहं-भाव होता है। नृत्य करते-करते गोपियोंके मनमें अहंभाव आया।

देखो हमारे रसिक लोग कहते हैं गोपियोंके मनमें अहंभाव आता नहीं है। उन्होंने उसका अभिनय किया। क्यों अभिनय किया ? कि जिससे लोगोंको मालूम पड़ ज़ाये कि अभिमान करने-पर प्रेमरस जो है उसमें बाधा पड़ जाती है। लोगोंको यह शिक्षा मिले यह पहचानें और श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

तत्रैवान्तरधीयत। इसकी व्याख्या यह है कि कहीं, गये नहीं, जहाँके तहाँ, वहींके वहीं, जैसे लुप्त हो गये हों, छिप गये हों। व्रजबासी लोग कहते हैं कि जब गोपी लोग अपनेमें मस्त हुईं, वे सोचने लगीं बहुत सुन्दर, हम बहुत मधुर, हम बहुत प्रेमवती, तब उनके ओढ़नीके जो कपड़े थे वे गिरने लगे नीचे और झटसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हींमें एक श्रीकृष्णने उठा लिया और उसको ओढ़ लिया और वे भी गोपी हो गये।

अब गोपियाँ पहचाने ही नहीं कि कृष्ण कहाँ गये! प्रेमके सम्बन्धमें हमारे जो पुराने रसिक हैं; अब मैं रस-दर्शनकी बात कर रहा हूँ। प्रेममें 'मैं प्रेमी हूँ' इस अभिमानका उदय नहीं होता।

न क्षोदीयानपि सखि मम प्रेमगन्धो मुकुन्दे
क्रन्दन्तीं मां निजसुभगताख्यापनाय प्रतीहि।
खेलद् वंशी वलयिनमनालोक्य तं वक्त्रबिम्बं
ध्वस्तालम्बा यदह महहप्राणकीटं बिभर्मि॥

ललिता सखीने पूछा कि स्वामिनी; आप तो प्रेमकी समुद्र हैं। प्रियाजीने कहा कि मेरे अन्दर तो जरा-सी प्रेमकी महक भी नहीं है। पर उनके लिए रोती-बिलखती क्यों हो? अपने सौभाग्यका विज्ञापन करनेके लिए। नहीं तो जिनके अधरोंपर बाँसुरी खेलती रहती है, उनको देखे विना भो मैं क्षण-क्षण काटनेवाले इन प्राणोंका पालन-पोषण करती हूँ, इससे बड़ा दुःख और क्या होगा? अब गोपियोंका अभिमान शान्त करनेके लिए उनके हृदयको निर्मल बनानेके लिए श्रीकृष्ण अन्तर्धान हुए। यह प्रेममें जो कठोरता आजाती है, वह मिटानेकी एक युक्ति है।

दूसरे अध्यायमें रासपञ्चाध्यायीके, पाँच बात कही हैं—एक तो अपने प्रियतमके विरहमें दुःख, आर्ति, पीड़ा—

उत्तापो पुटपाकतोऽपि गरलं ग्रामादपि क्षोभणे
दम्भोलेरपि दुःसहः कटुरलं हृन्मग्नशल्यादपि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीव्रः प्रौढविसूचिका निचयतोऽप्युच्चैर्ममायं बली
मर्माण्यद्य भिनत्ति गोकुलयतेर्विश्लेषजन्मा ज्वरः ॥

खौलता हुआ सोना। हमारा दिल क्या हो गया ? खौलता हुआ सोना, हालाहल विष, वज्रसे भी अधिक दुःसह, जैसे हृदयमें कोई तिकोना बाण चुभ गया हो, जैसे हैजा हो गया हो। श्रीकृष्ण-के विरहमें मेरी यह स्थिति हो गयी है।

तो पहले पीड़ाकी पीड़ा थी। जब विरहकी पीड़ामें गोपियाँ मरणासन्न हो गयीं श्रीकृष्णकी जो लीला-शक्ति है उसने आकर गोपियोंको सम्भाल लिया। वे अपने पहले जहाँ कृष्णको भूलकर सौन्दर्य-माधुर्यके चिन्तनमें मग्न थीं, विरह आनेपर वे अपनेको भूलकर श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यके चिन्तनमें लग गयीं। विरह तापक भी होता है और प्रकाशक भी होता है। रसशास्त्रमें विरह-को सूर्यके समान मानते हैं। जैसे सूर्य रोशनी तो देता है, लेकिन ताप भी है देता, इसी प्रकार विरहमें अपने प्रियतमके गुणोंकी स्मृति तो होने लगती हैं। प्रकाश होने लगता है, उनमें यह गुण है, यह गुण है, मैंने ठीक व्यवहार नहीं किया उनके साथ लेकिन पीड़ा भी बहुत होती है, ताप भी बहुत होता है। प्रीति एकरस होती है।

दोषेण क्षयितां गुणेन गुणता कामप्यनातन्वती
प्रेम स्वारसिकस्य तस्य चिदियं विक्रीडती क्रिया।

प्रेम अपने हृदयका रस है, स्वाभाविक, नैसर्गिक है। प्रेम बनावटी नहीं होता, अध्याहार्य नहीं होता। उधार लिया हुआ प्रेम प्रेम नहीं होता। प्रेममें नकल नहीं होती। प्रेम वह होता है जो अपने प्रियतममें दोष देखकर भी क्षीण नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता। जो गुण देखकर बढ़ता नहीं। माने गुण-दोषका कोई असर नहीं पड़ता। अपना प्यारा दूर हो तो घटता नहीं, और निकट हो तो बढ़ता नहीं। निकट हो तो बढ़ता नहीं और निकट हो तो घटता नहीं। देशका, स्थानका कोई प्रभाव प्रेमपर नहीं पड़ता और बहुत दिनमें आवें या पास ही रहें इसका भी प्रभाव नहीं पड़ता। प्रेम ऐसा रस है, साक्षात् परमात्माका स्वरूप—**रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।** इस रसकी प्राप्ति हो जानेपर आनन्द ही आनन्द हो जाता है। अब गोपियाँ गोपियाँ नहीं रहीं, कृष्ण हो गयीं। और कृष्ण होकर वे कृष्णकी लीला करने लगीं। यह दूसरे अध्यायमें तन्मयताका वर्णन है—

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्।

किसी गोपीके ऊपर चढ़ गयी कि तू कालिय नाग, मैं कृष्ण हूँ, मैं नृत्य कर रहा हूँ, और किसाने साड़ी उठा ली, कपड़ा उठा लिया—यह मैंने गोवर्द्धन उठा रखा है, मैं कृष्ण हूँ। कोई बोली मैं कृष्ण हूं पूतनाका दूध पी रही हूं। किसीने कहा कि देखो मैं कितनी ललित गतिसे, प्रेमकी गतिसे चलती हूं। कोई शकटासुर-को पाँवसे तोड़ने लग गयी।

अब गोपियोंको अपना रूप भूल गया, श्रीकृष्णके रूपमें तन्मय हो गयीं। तो विरहमें पीड़ा हुई, पीड़ामें आत्मविस्मृति हुई, आत्मविस्मृतिमें श्रीकृष्णमें तन्मयता हुई, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, अनुसन्धान, जब खोज पैदा होती है, आज आप लोगोंको तो शायद विरोध हो उसका, हम जब पैदल रास्तेमें चलते थे, सैकड़ों मीलकी हजारों मीलकी यात्रा, तो जब जाते थे, हाथ-पाँव जब बिल्कुल बेकाम होने लगते थे, तो जो रास्तेमें मिलता उसीसे पूछते कि अभी गाँव कितनी दूर है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रेमाङ्गा प्रकृतिविचला चेतना चेतनेश्वर।

जो प्रेमसे व्याकुल हो जाते हैं उनको यह पता नहीं चलता कि हम किससे पूछ रहे हैं ? गोपियाँ वट-वृक्षसे पूछें, बड़े ऊँचे हो, देख रहे हो, कहाँ हैं कृष्ण, पीपलसे पूछें, पाकरसे पूछें। अरे ये बड़े-बड़े पेड़ हैं ये क्या बतावेंगे, ये तो अपने अभिमानमें फूले हुए हैं। यमुनातटके वृक्षोंके पास गयीं, ये तो तीर्थावसी हैं। ये दया करके बतावेंगे। जैसे तीर्थवासी परार्थ भोक्ता, दूसरोंसे पैसा लेनेके लिए तीर्थमें पैदा होते हैं, जो यात्री आवे उससे कुछ लेलें। ये जमुना किनारेके जो पेड़ हैं इनके हृदयमें दया-माया नहीं है। मालतीके पास गयीं, तू खिली है, तुझे छूकर गये हैं! तुलसी! तू तो बहुत प्यारी है! देखो, यह है अनुसन्धान, अपने प्रियतमकी खोज, रसस्वरूप ब्रह्मकी जिज्ञासा

रसो व सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।

गोपियोंको मार्गमें चरण-चिह्न मिले। चरण-चिन्हपर चलते-चलते श्रीराधारानी मिलीं। अब उस आराधनीकी प्राप्ति हुई, जिसमें अभिमान मिट जाता है। राधारानीके साथ होकर गोपियाँ वनमें घूमने लगीं। वहाँ प्रेमका उदय हुआ। अभिमान रहित प्रेम-आराधना।

तमःप्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः।

श्रीराधारानीके साथ आगे बढ़ते-बढ़ते जब देखा कि घोर अन्धकार हैं वनमें, तो एक सखिने कहा कि अरी सखी तुम ढूँढ रही हो प्यारे को, यदि वह मिलना न चाहता हो तो जितना-जितना तुम ढूँढोगी, उतना-ही उतना वह अन्धेरेमें, वृक्षोंकी छायामें चला जायेगा और उसके पाँवमें कहीं काँटे लग जायँ, कहीं कुश लग जायें, कहीं किसी लतामें उसके पीताम्बर उलझ जायँ, कहीं शरीरमें गड़ जायँ, तो उसको कितना कष्ट होगा ! नहीं, नहीं, अब ढूँढ़ना ठीक नहीं है जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वही प्रसन्न होकर मिलेगा, तब मिलेगा, उसमें हमारा बल, हमारा पौरुष काम नहीं करेगा। उसकी कृपा, उसकी प्रसन्नता, उसकी उदारता, उसकी शालीनता उसके हृदयमें जो हमारे प्रति प्रेम है वही काम करेगा। इसलिए जहाँ-तहाँ अन्धेरेमें ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है।

दूसरी गोपीने कहा—फिर क्या करें? देखो—**यत्र यन्नष्टं तत्रैव तल्लभते।**

जहाँ जो चीज खोती है, वहीं वह चीज मिलती है। दूसरी जगह ढूँढ़नेसे नहीं मिलती। भागवतकी श्रीधरी टीकामें एक दृष्टान्त है रातके समय एक बुढ़िया सड़कपर रोशनीमें कुछ ढूँढ़ रही थी। एक उदार दयालु सज्जन उधरसे निकले। बोले—माँ, क्या ढूँढ़ रही हैं? बोली—मैं सुई ढूँढ़ रही हूँ। माताजी; सुई आपकी कहाँ खोई थी? खोई तो घरपर थी। तब सड़कपर क्यों ढूँढ़ रही हो? घरमें रोशनी नहीं थी। सड़कपर रोशनी थी, सो यहाँ ढूँढ़नेके लिए आगयी। **गृहे नष्टं वने मृग्यते।** घरमें जो चीज खोयी जाती है, वनमें वह चीज नहीं ढूँढ़ी जाती। हमारे हृदयमें भगवान् रहते हैं, वहाँ उनका दर्शन नहीं हो रहा है, वहाँ न ढूँढ़के यदि उनको पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणमें ढूँढते जाओगे, कहाँसे मिलेंगे? यहीं ढूँढो। एक पुराने कविका कवित्त है—

मैं ही हूँ व्रज मोमें बसत है वृन्दावन।

मैं व्रज हूं, मेरे हृदयमें ही वृन्दावन है और राधा-कृष्ण युगल-का बिहार भी वहीं है। उसको ढूढ़नेके लिए बाहर कहाँ जाना?

केवल संकेतके लिए मैं यह बात आपको सुनाता हूं कि केनोपनि-षत्में जहाँ ब्रह्मकी उपासनाका वर्णन है, चौथे खण्डमें, वहाँ भौतिक-उपासनाके लिए वनका वर्णन किया गया है **तद्ध तद् वनं नाम।**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक ऐसा वन है जिसमें ब्रह्मके ही वृक्ष हैं, ब्रह्मकी ही लता है, ब्रह्मके ही पत्र हैं, पुष्प हैं, ब्रह्मके ही फल हैं। यह ब्रह्ममयी भूमि है– तद् वनं नाम।

आओ; जड़ताका परित्याग करके उस वनमें परमात्माको ढूँढ़ो। शुक्ल यजुर्वेदमें—

किं तद् वनं। क उ वृक्ष आस।

वह वन कौन-सा है, वह वृक्ष क्या है? कृष्ण यजुर्वेदमें इसका पाठ बदल दिया।

ब्रह्म तद् वनं। ब्रह्म उ वृक्ष आस।

ब्रह्म ही वन है और ब्रह्म ही वृक्ष है। आप जिस वृन्दावनका ध्यान कर रहे हैं, आपके मनमें जो वृन्दावन आ रहा है, वह ध्येय वृन्दावन है। वह जड़ वृन्दावन नहीं है, ध्येय वृन्दावन है। फिर उसमें इस आधिभौतिक दृष्टिका वर्णन करके आधिदैविक दृष्टिका वर्णन है।

विद्युतो व्यद्युत

बिजलियाँ कौंध रही हैं। घनी घटामें जैसे बिजली बीच-बीचमें कौंध जाये, वैसे श्रीकृष्ण-रूप घने बादलमें कभी पीताम्बर चमक जाता है, कभी दाँतकी रोशनी छिटक जाती है, कभी नाखून चमक जाते हैं, कभी श्रीकृष्णकी छविच्छटा बीच-बीचमें विद्युतो व्यद्युत। आध्यात्मिक उपासना बतायी–

लालयतीव। ध्यायतीव।

हमारा मन कभी ध्यान करता है, कभी छूट जाता है बीचमें, कभी चंचल हो जाता है, कभी स्थिर हो जाता है। डरना नहीं चाहिए। आओ, वृन्दावनमें। यह जो श्रीकृष्णका अनुसन्धान है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद् विजिज्ञासस्व ।

आओ इस ब्रह्ममें, आओ इस विद्युन्मयी चमकमें अपने मनको लगावें। कभी टूटे तो डरे नहीं, लगावें।

गोपियाँ सब जमुनाजीके तटपर इकट्ठी हुईं। आप जानते हैं, यमुनाजीकी साधुता जो है वह गंगादि नदियोंकी अपेक्षा कुछ विलक्षण है। वहाँ तो श्याम वालुका-कण कृष्णरूप है और गौर बालुका-कण राधारूप है और यह गौर-श्यामकी जोड़ी ही मानो अगणित रूप धारण करके विहार कर रही है। वृक्ष कृष्ण हैं तो लता राधा है।

व्रजमें स्त्री-जातिके पशु, पक्षी, मृत्तिका भी राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण हैं। वहाँ लताओंकी जो मुस्कान है वह फूल है, वृक्षोंका जो रस है वह फल है। यह आप भौतिक रूपसे इस वृन्दावनको न देखें, अपने हृदयमें जो वृन्दावन है उसको देखें। यमुनाजी श्रीकृष्णके ध्यानमें मग्न, मन्द मन्थर गतिसे प्रवाहित हो रही हैं, साँवरी-साँवरी। कृष्णका ध्यान करते-करते साँवरी हो गयी हैं। हमारे वृन्दावनके रसिकोंने वर्णन किया कि एकबार श्रीराधा-कृष्ण दोनों यमुनामें उतरे कि आओ डुबकी लगावें और एक ढूँढ़ें कि डूबकर कहाँ गये और एक डुबकी लगावे और जब वह पकड़ा जाये तो वह ढूँढे और दूसरा डुबकी लगावें। वह देखो उस कमलतक तैरकर चलेंगे, देखें पहले उस कमलको कौन छूता है। तो जब श्रीकृष्ण डुबकी लगावें तो जमुनाजी अपने जलके साँवरेपनसे उनको छिपा लें और जब श्रीराधारानी डुबकी लगावें तो उनकी सुवर्णवर्ण चमक जो है वह चमक उठे और श्रीकृष्ण जाकर झट पकड़ लें। श्रीराधारानीने कहा—यह यमुना तुम्हारा पक्षपात करती है। अब हमारा यह डूबना-उतराना यमुनाजीमें नहीं होगा, किसी सरोवरमें चलें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रजमें ऐसा विलक्षण भाव है। एकाध बीचमें सुना देते हैं। एक दिन आगे-आगे गौएँ पीछे-पीछे कृष्ण-ग्वालवाल चल रहे थे। धूपका समय था। आप लोग अतिशयोक्ति कहेंगे। एक स्थान ऐसा पड़ा जहाँ श्रीकृष्ण रुक गये और सूर्यकी ओर पीठ करके लटक गये, अब वहाँसे आगे ही न चलें। ग्वाल बाल गायोंके पीछे-पीछे उनके आगे निकल गये। ललिता सखीने दूरसे देखा—अरे धूपमें श्रीकृष्ण ऐसे खड़े हैं, इतना घाम है, ऐसी जलती हुई नीचे धूप है। ललिता सखी आयी, देखा तो क्या आश्चर्य, वहाँ श्रीराधारानीके चरणचिह्न थे। तो श्रीकृष्णने कहा कि ये जो श्रीराधारानीके चरणोंके चिह्न हैं इन्हें भी धूप न लगे, इनको भी सूर्यका ताप न लगे, इसके लिए श्रीकृष्ण उसपर अपने शरीरकी छाया करके खड़े हैं। बहुत सुकुमार भाव ! व्रजवासियोंके जो भाव हैं बड़े सुकुमार होते हैं।

अब गोपियाँ सोचने लगीं कृष्ण आवें कैसे ? एकने कहा सखो ! कृष्ण संगीतके बड़े शौकीन हैं। जहाँ संगीत होता है वहाँ जाकर चुपचाप खड़े हो जाते हैं।

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

मैं बैकुण्ठमें नहीं रहता, योगियोंके हृदयमें भी नहीं रहता, जहाँ मेरे भक्त प्रेमरससे भरी बोली बोलते हैं, वहीं मैं रहता हूँ। मैं अपने भक्तोंकी मीठी-मीठी आवाज सुननेके लिए खड़ा रहता हूं। तब गोपियोंने कहा कि यह तो अच्छी युक्ति है। आओ हम भी गावें, हमारा गाना सुननेके लिए वे जरूर आ जावेंगे। उसीको गोपीगीत बोलते हैं। रासपञ्चाध्यायीका वह तीसरा अध्याय है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥
शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृषा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥

बड़े सुरसे लोग गाते हैं। जिनको संगीत आता है वे वीणापर, सारंगीके साथ, सितारके साथ तबलेके साथ, इसका गान करते हैं। बहुत सुकुमार भाव है इसमें। गोपीने कहा कि व्रज तो ऐसे ही श्रेष्ठ है स्वभावसे ही, लेकिन जबसे तुमने अपनेको व्रजमें प्रकट किया तबसे व्रज तो पृथिवीमें सबसे श्रेष्ठ हो गया। सारे संसारमें जिस लक्ष्मीकी सेवा की जाती है, वे व्रजमें आकर यहाँके लता-वृक्षकी सेवा करती हैं। जो वैकुण्ठमें स्वामिनी हैं वे व्रजमें दासी हैं और यहाँके एक-एक वृक्ष, एक-एक लता, एक-एक चप्पे भूमिको शुद्ध करके चलती हैं क्योंकि इसपर हमारे प्यारे श्रीकृष्णके पाँव पड़ेंगे। लेकिन कृष्ण इतने कठोर हो, देखो! एकबार देख लो, मालूम पड़ता है तुमने आँख बन्द कर ली है, कहीं दूर चले गये हो, खोलके आँख देखो! जो तुम्हारी प्रेमिका, तुम्हारी प्रेयसी गोपियाँ हैं वे रातके समय इधर-उधर भटकती तुम्हें ढूँढ़ रही हैं! यह तुमसे कैसे सहन होता है?

देखो, गोपियोंकी क्या दशा है, कहाँ छिपे हो? ऐसा करो कि तुमको हम देख लें, तुम हमें देखो, हम तुम्हें देखें। तुम्हारी सुन्दरताने, मोहनी मूरतिने हमको मोहित कर लिया है और यदि तुम्हारे बिना ही मरना था तो यह दुःख असह्य है, क्योंकि यहि हम विषैले नागके विषसे मर जातीं, यदि हम कालिय-नागके विषसे मर जातीं तो कम-से-कम तुम्हारी बदनामी तो नहीं होती न! अब हम तुम्हारी वजहसे मरेंगी तो तुम्हें अपयश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगेगा कि इसकी वजहसे गोपियाँ मर गयीं। और हम जानती हैं तुम केवल गोपीनन्दन नहीं हो !

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

आप केवल गोपीके पुत्र नहीं हैं, वल्कि सबके हृदयमें रहने-वाले अन्तर्यामी नारायण हैं।

सन् ३६ में प्रयागराजमें अर्द्धकुम्भी थी, मैं वहाँ बहुत ऊँचा मंच बना था, उसपर बैठकर भागवतकी कथा करता था। संन्यासी नहीं था। उस समय गृहस्थ था। सब महात्माओंको बुलाबुलाकर लोग लाते थे। श्रीजयेन्द्रपुरीजी महराज आये, श्रौतमुनिजी आये, भागवतानन्दजी आये, श्रीउड़िया बाबाजी महाराज आये, आकर बालूमें बैठते, मैं पहचानता नहीं था, इसी श्लोकका अर्थ कर रहा था—

न खलु गोपिकानन्दनो भवान्।

मैंने उसमें-से ज्योंही अर्थ किया 'श्रीकृष्ण, न खलु गोपिका-नन्दनो भवान्' आप गोपीके बेटे नहीं हैं। यदि गोपीके बेटे होते, तो हमलोगोंके साथ इतनी निष्ठुरता नहीं करते, न खलु गोपिका-नन्दनो भवान्। श्रीकृष्णने कहा कि ठीक है गोपी; हम तो अन्त-र्यामी हैं, द्रष्टा हैं, साक्षी हैं। बोले—'न खलु देहिनामन्तरात्मदृक्' तुम अन्तर्यामी भी नहीं हो, नहीं तो हमारे हृदयकी पीड़ाको देखते तो तुमसे सहन कैसे होती ? नहीं, मैं तो द्रष्टा हूं, साक्षी हूं। अरे इतना निष्ठुर द्रष्टा, इतना निष्ठुर कहीं साक्षी होता है ? अरे गोपियो, ब्रह्माजीने मुझसे प्रार्थना की कि विश्वकी रक्षाके लिए चलो, तब मैं आया, मैं तो नारायण हूं। गोपियों ने कहा—

न खलु, विखनसार्थितो विश्वगुप्तये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माजी ने तुमसे बिल्कुल प्रार्थना नहीं की है, नहीं तो विश्वकी रक्षाके लिए आते तो क्या हमारी रक्षा नहीं करते ?

अरी गोपियो ! फिर मैं कौन हूं ?

सख उदेयिवान् सात्वतां कुले

तुम तो जैसे आकाशमें से कोई टपक पड़े, आकाश-कुसुम, वैसे कहींसे टपक पड़े हो, न दया है, न माया है, न दिल है, हमको सतानेके लिए कहाँ छिप गये हो ? ऐसे बोलती हैं।

एक ओरसे आवाज आयी—कृष्ण, तुम हमारे सिरपर हाथ रखो !

शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्—

अपना जो परम मधुर, सरस कर-कमल है वह हमारे सिरपर रख दो। कृष्णने कहा —बहुत बढ़िया, हम तुम्हारी प्रार्थना मानते हैं, तुम सब लोग एक कतारमें खड़ी हो जाओ, मैं तुम्हारे पीछेसे सिरपर हाथ रखता हुआ चला जाता हूँ, तुम्हारी प्रार्थना पूरी हो जायेगी। गोपियोंने कहा–नहीं, अपना जो सुन्दर मुखारविन्द है उसका दर्शन कराओ। बोले–ठीक है तुम लोग खड़ी हो जाओ ! मैं सामनेसे निकल जाता हूं। गोपियोंने कहा–यह नहीं !

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ।।

और सिरपर हाथ रखनेसे भी काम नहीं बनेगा। सिरपर हाथ रखना माने तुम हमारे हो। मुखारविन्दका दर्शन कराना एक सामान्य बात है, तब ? गोपियोंने कहा—वह जो तुम्हारे चरण-कमल हैं वे चाहिए।

अरे, चरणकमल क्यों चाहती हो गोपियो ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारे जो चरणकमल हैं ये दोषहारी हैं। यदि हमारे कोई दोष होंगे, पाप होंगे तो तुम हमारे हृदय पर जब इन्हें रख दोगे, तो हमारे दोष निवृत्त हो जायेंगे। आओ अपने चरणकमलको हमारे वक्षस्थलपर रक्खो। हमारी यह प्रार्थना है। सिरपर हाथ रखनेसे काम नहीं चलेगा, मुखका दर्शन करानेसे काम नहीं बनेगा। ये जो तुम्हारे चरणारविन्द हैं, प्रणतदेहिनां पापकर्शनं — जो इनमें एक बार प्रणाम करता है, उसके सारे पाप मिट जाते हैं, तुमसे मिलनेमें जो प्रतिबन्ध हैं, रुकावट हैं, वे मिट जाते है। बोले— अरे तुम्हारा हृदय तो बड़ा कठोर है गोपियो! छाती तुम्हारी इतनी कठोर, मेरे पाँव कोमल, रक्खूँगा तो चोट लग जायेगी मुझको। बोलीं—

तृणचरानुगम्

बछड़ोंके पीछे-पीछे, गायोंके पीछे-पीछे, जंगल-जंगल भटकते हो तब तुम्हारे चरणोंपर चोट नहीं लगती और हमारे हृदयपर रखनेसे चोट लग जायेगी।

कृष्णने कहा—ओ हो! तुम हमारे चरणको इतना कठोर समझती हो गोपियो!

मनमें ही यह संवाद हो रहा है। गोपियाँ ही एक बार बोलती हैं--पापकर्शनं, फिर बोलती हैं--तृणचरानुगं। फिर मनमें कृष्ण आये, बोले-तुम हमारे पाँवको इतना कठोर समझती हो? गोपियोंने कहा श्रीनिकेतनं-तुम्हारे चरणोंमें तो साक्षात् लक्ष्मी निवास करती हैं। भूदेवीके वक्षस्थलपर पाँव रखते हुए तुम चलते हो, तो श्रीदेवी बीचमें आकर अड़ जाती हैं कि हमारे ऊपर रखो।

नहीं गोपियो, तुम्हारे हृदयमें कुछ दोष है, इस कारण तुम्हारे हृदयपर चरण नहीं रख सकता। गोपियोंने कहा—

फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालियनागके सिरपर तुमने अपना पाँव रक्खा, उसके शरीरमें कितना बिष भरा हुआ था ! सारी यमुनाजी विषैली हो गयी थीं, और

यद् यद् शिरो न नमते—

वह अभिमानसे जिस सिरको उठाये रखता था, उसी पर तुम्हारा पाँव पड़ता था। कालिय नागके सिरपर नाचनेवाले, ऐसे विषैले, ऐसे जहरीले, हालाहल विषसे भरे हुए नागके सिरपर पाँव रखते हो, और हमारे वक्षस्थलपर पाँव रखनेमें तुमको डर लगता है ? कृणु कुचेषु नः—बोले–नहीं गोपियो, तुम्हारे हृदयमें काम है। जिसके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ होता है, उसके हृदयपर हम अपना पाँव कभी नहीं रखते। गोपियोंने कहा–ठीक है, हम मान लेती हैं, हमारे हृदयमें काम है, परन्तु जब तुम अपना चरण रखोगे तो कामका नाश हो जायेगा। हमारे हृदयमें जो काम-वासना है, कामका जो साँप सोया हुआ है, उसको भगानेका उपाय ही यह है कि हमारे हृदयपर अपने चरण रख दो ! भगवान्‌का चरण हृदयपर आया और कामका नाश हुआ :

श्रीकृष्णने कहा—अच्छी बात है गोपियो ! यह करनेको भी हम तैयार हैं। तुम लोग लेट जाओ सब और हम तुम्हारी छाती पर पाँव रखते हुए चले जाते हैं। बोलीं—नहीं, इससे भी काम नहीं चलेगा।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतारधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः॥

हमको तो पहले तुमने जिसमें-से मधुकी वर्षा हो रही हो, इतनी मीठी-मीठी वेद-वाणीसे जिसमें-से भक्तिकी महिमा, रसकी महिमा भरी हुई है, उससे तुमने हमको मोहित कर लिया। कैसी सुन्दर वाक्य-रचना, वाक्य-विन्यास, अर्थालङ्कारसे भरपूर रसात्मक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाक्य बोलकर तुमने हमको आकृष्ट कर लिया। अपने प्रेम-भरे नेत्रोंसे देख-देखकर, हमारे हृदयको अपनी ओर खींच लिया। अब हमारे प्राण जा रहे हैं, अब हमको चाहिए अमृत।

अरी गोपियो स्वर्गसे अमृत ला दें! नहीं, वह अमृत नहीं चाहिए। हमको तो जो रखा हुआ अमृत है वह नहीं चाहिए, धरा अमृत नहीं चाहिए, धरतीका अमृत नहीं चाहिए, शीशीमें रखा हुआ अमृत नहीं चाहिए, हमको तो वह अमृत चाहिए जो दूसरी जगह रखा ही नहीं जाता। हमको जड़ समुद्रके मन्थनसे निकला हुआ अमृत नहीं चाहिए, हमको प्रेमामृत चाहिए। अच्छा, एक दो बूँद ही सही? नहीं, आप्याययस्व नः हमारे रोम-रोमको उस अमृतसे तर कर दो। अरी गोपियो, तुम्हारे हृदयमें इतना प्रेम है तो तुम मेरे बिना जीवित कैसे रही? मन मनमें संवाद है। आपेक्षिकी संगति बोलते हैं इसको संस्कृतमें। गोपीने एक बात कही। उसके मनमें फिर हुआ कृष्ण ऐसा कहेंगे तो हम इसका यह जवाब देंगे। अपने मन ही मन चर्चा हो रही। माने कृष्णने उनके मनमें कहा कि जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहाँ विरह तो होता नहीं।

कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके।
यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति॥

देखो गोपियो, धरतीपर निष्कपट प्रेम नहीं होता। दुनियाँमें कोई किसीसे कितना भी प्रेम करे, परन्तु कुछ-न-कुछ उससे छिपाकर रखता है। अपने ऊपर जितना विश्वास होता है उतना परायेपर, दूसरेपर विश्वास नहीं होता। यदि हो जाये तो? यदि निष्कपट प्रेम हो जाये तो विरह नहीं होगा और यदि विरह हो जाये तो? जीना नहीं होगा। और, तुम तो मेरे विरहमें भी ऐसा बढ़िया गीत गा रही हो!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्ण, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। तब किसका दोष है?

तव कथाऽमृतं पाययद्‌भि सुकृतिभिः वञ्चितम्।

ये जो तुम्हारे एजेण्ट फैले हुए हैं सब, कमीशन एजेण्ट, तुम्हारी तारीफ कर-करके, तुम्हारी कथा सुना-सुनाकर, तुम्हारी उदारताका शालीनताका, तुम्हारे प्रेमका मधुरताका वर्णन कर-करके ये जो तुम्हारे भेजे हुए ठग हैं, इन्होंने हमको ठग लिया।

तव कथामृतं तप्तजोवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

एक गोपी कहती है यह जो तुम्हारी कथा है, तुम्हारे सम्बन्धकी चर्चा है, वह अमृत है। एकने कहा—नहीं नहीं, जो तुम बोलते हो सो ही अमृत है।

अच्छा, हमारे प्रसंगको, हमारी कथाको तुम अमृत कह रही हो! नहीं, वह अमृत नहीं कह रही हैं जो स्वर्गमें होता है, स्वर्गके अमृतसे भी तुम्हारी कथाका अमृत विलक्षण है। **तप्तजीवनं**, जो स्वर्गका अमृत है, वह तो जो अमीर होते हैं, अमीर-उमराव, कहो, अमर कहो, देवता कहो, अमरीकावासी कहो, कोई फर्क नहीं।' स्वर्गका अमृत तो बड़े-बड़े लोगोंको पीनेको मिलता है, गरीबोंको नहीं मिलता है। परन्तु यह जो कथारूप अमृत है, ये जो संसारके दुःखसे सन्तप्त हैं, जल रहे हैं, उनके लिए जीवनदाता है। तप्त-जीवनं। जो दुःखसे जल रहे हैं, पापसे जल रहे हैं, वासनासे जल रहे हैं, अभिमानसे जल रहे हैं, अज्ञानसे जल रहे हैं, उनको जीवन देनेवाला यह कथामृत है, वैसा नहीं है। और, उस अमृतकी तो निन्दा करते हैं महात्मा लोग और इस अमृतकी प्रशंसा करते हैं।

कविभिरीडितम्—एक बात और है, स्वर्गमें जाके कोई अमृत पीयेगा तो ऐसा ही है जैसे होटलमें कोई पहलेसे पैसा रख दे और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ खाये, पीये, मौज करे और पैसा खत्म हुआ तो निकाल देंगे। और यदि पैसा ठीक-ठीक न चुकाओ तो मोटर भी जब्त कर लेते हैं और यह जो अमृत है, अद्‌भुत है।

कल्मषापहम्—इसके सेवनसे पुण्यका नाश नहीं होता है। ऐसा यह कथामृत है। कथा सुननेसे पुण्यका नाश नहीं होता, पापका नाश होता है।

श्रवणमङ्गलम्—उस अमृतको पीनेके लिए बहुत श्रम करना पड़ता है और यह सुननेसे ही मंगल कर देता है।

श्रीमदाततम्—वह नशीला है और यह शान्त है। वह थोड़ा है और यह बहुत है। इस कथामृतका वितरण करनेवाले जो लोग हैं वे तो बहुत बड़े दाता है।

एक गोपीने कहा—नहीं, नहीं, यह गलत बोल रही है। तव क्या है? कि तव कथामृतं, तुम्हारी कथा सुनना मर जाना है, मौत है। जो सुन गये सो दुनियासे मर गये। यह तो मारनेवाली है। तप्तजीवनं—कैसी है कि जैसे तवा आगमें खूब लाल-लाल हो रहा हो और कोई चार बूँद पानी छिड़क दे, वह और आगको उकसाने वाला है। कविभिरीडितं—जैसे भाट लोग किसीकी तारीफ करते हैं तो सच्ची नहीं होती है, वैसे कवि लोग इसकी प्रशंसा करते हैं। सच्ची प्रशंसा नहीं है। कल्मषापहम्—अरे जो पापी होवे अपना पाप मिटानेके लिए सुनने जायें, हम कोई पापी हैं। श्रीमदाततं—धनी लोगोंने यह कथावाचकोंको पैसा दे-देकर इसका विस्तार करवाया है। इस तुम्हारे कथामृतने तो हमको मार डाला।

यह एक प्रकारकी कथामृतकी स्तुति है। इसीके कारण हम अपने घर-द्वारसे, सगे-सम्बन्धियोंसे, धर्म-कर्मसे अलग हो करके, सब कुछ मटियामेट करके अब तुमसे मिलनेके लिए आयीं। अब तुम मारे हुएको मार रहे हो, जल्दी प्रकट हो जाओ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार

दुनियाँमें हमलोग कई बार हँसते हैं, कई बार रोते हैं। माने दुःखी भी होते हैं, सुखी भी होते हैं। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होता जो चौबीस घण्टेमें दुःखी न हो और कभी सुखी न हो।

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।

दिवसे दिवसे मूढं आविशन्ति न पण्डितम्॥

यह महाभारतकी गायत्री है। चार गायत्री हैं। उनमें-से एक है। दिन भरमें हजार बार शोक आता है, हजार बार भय आता है। क्योंकि हम अपने स्वरूपको, भगवान्‌को भूल जाते हैं। यदि हम अपने प्रसन्न, निर्मल सदा मुकुन्द गम्भीर स्वरूपपर दृष्टि रखें तो शोक, भयका कहीं प्रश्न ही नहीं है। हमारे हृदयमें भगवान्‌पर दृष्टि रहे, तब भी शोक, भयका कहीं प्रश्न नहीं है। पीछेकी बात, आगेकी बात पहले ध्यानमें आती है, जब हम भगवान्‌को भूले हुए होते हैं। एक सेठने किसी सन्तसे पूछा—महाराज, आपको कभी-कभी मेरी याद आती होगी? सन्तने कहा—सेठ तेरी याद तो आती है, पर तब आती है जब भगवान् भूल जाते हैं।

तो यह दुनिया शब्द भी संस्कृतका ही बना है। दून शब्द है दुःखी होनेके अर्थमें। 'राजा दुःखी परजा दुःखी साधुनके दुःख दूना।' इस दुःखसे छूटनेका उपाय यह है कि हम संसारकी वजहसे सुखी-दुःखी न हों। 'भगवान्‌को कारण बनाकर सुखी-दुःखी हों' लड़ना हो तो उन्हींसे लड़ लें। रोना हो तो उन्हींके लिए रोवें, हँसना हो तो उन्हींसे हँसें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो यह जो संसारका दुःख है यह सर्वथा छूट जायेगा। इसके लिए चाहिए है भगवान्से ममता। दुनियामें जब हम किसीसे ममता कर लेते हैं और पता चल जाये कि इनका प्रेम हमसे है तो आपको बहुत परेशान करेगा। उसी दिनसे परेशान करना शुरू कर देगा, जिस समय उसको मालूम पड़ेगा कि अब यह हमको छोड़ नहीं सकता। यह दुनियाकी रीति है, इसके लिए यह जो संसारमें ममता है उसका मुख, उसका रुख बदलना पड़ता है।

पहले तो हृदय कोमल होना चाहिए। देखो हम एक रुमाल हाथमें रखें तो ख्याल रखना पड़ता है कि कहीं गिर न जाये, कहीं छूट न जाये, कोई छीन न ले जाये। हाथको कड़ा रखना पड़ता है। संसारकी वस्तुओंमें जिसकी ममता होती है, उसको अपना दिल कड़ा करके रखना पड़ता है कि जिससे हमारी ममता है वह छिन न जाये, वह छूट न जाये, वह विश्वासघाती न हो जाये, हमारे बारेमें उनका दिल बदल न जाये। जब हम किसीसे ममता करते हैं तो उसकी फिक्र हमारे मनमें आने लगती है तब हम पकड़कर रखते हैं, हृदय कठोर हो जाता है। संसारमें ममता शिथिल होनी चाहिए, जितनी ममता स्थिर होगी संसारमें उतना हृदय कठोर होगा और जितनी शिथिल होगी उतना ही हृदय कोमल होगा। तो संसारमें ममता होवे शिथिल और हृदय हो जाये कोमल और उसमें ममताकी लग जाये मोहर—'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।' ममत्वातिशयाङ्कित।

यही भाव जब गाढ़ा हो जाता है, "भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेम निगद्यते" जब यही भाव गाढ़ा हो जाता है तब उसको प्रेम कहते हैं। अब हम भगवान्के संयोगकी भावना करें तो सुख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा और वियोगकी भावना करें तो दुःख होगा। पर आपको यह मालूम होगा कि भगवान्‌के लिए जो दुःख होता है वह सुख-परिणामी होता है। माने उसके अन्तमें सुख होता है। हमको याद तो नहीं है कि यह किस सन्‌की बात होगी, मैंने एक 'भरत-मिलाप' या 'रामराज्य' नामका सिनेमा देखा था। तो उसमें रामचन्द्र सीताके वियोगमें बहुत दुःखी होते हैं एकान्तमें। छाती पकड़ लेते हैं। पेट पीठमें लग जाता है, आँखोंमें आँसू चुच-आने लगते हैं। तो देख-देखकर मैं बैठकर रोता रहा। जितनी देर देखा, आँखोंसे आँसू गिरते रहे। रामका दुःख हमारा दुःख हो गया। लेकिन जब वहाँसे निकला बाहर तो हमको दुःख हुआका ख्याल ही न हो, यह ख्याल हुआ बड़ा बढ़िया रहा, बड़ा सुख मिला। आप देखो! एक बार मैं मैसूर गया था तो वहाँ जो चित्र-शाला है, उन दिनों तो वहाँ राज्य था मैसूर नरेशका, वहाँकी चित्रशाला देखी, जब शृंगार रसके चित्र देखे तो लगा कि भाव-नाओंका उदय हो गया है। जब हास्यरसके चित्र देखा तो हँसी आने लगी और जब करुणरसके चित्र देखे तो हृदयमें करुणा उमड़ आयी, बाहर निकले तो यह हुआ कि बड़ा सुख मिला, बड़ा सुख मिला। बड़ा मजा आया।

तो जब हम अपने हृदयमें ही सुख-दुःखका अनुभव करने लगते हैं और बाहरी वस्तुओंसे उसका सम्बन्ध नहीं रखा तो चाहे सुखकी वृत्ति बने चाहे दुःखकी, दोनों ही सुख देनेवाली हो जाती हैं। यह जो भगवान्‌से प्रेम है।

जब श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए हृदयमें पीड़ा होती है तो हाला-हल जहरकी कड़वाहट भी फीकी पड़ जाती है और जब संयोगका अनुभव होता है तो सुधाकी माधुरी भी फीकी पड़ जाती है। जिसके हृदयमें श्यामसुन्दरका प्रेम आजाता है वही जानता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है कि प्रेमके कदम, प्रेमके पद कैसे पड़ते हैं, कहीं टेढ़े पड़ते हैं, कहीं सीधे पड़ते हैं, कहीं मीठे पड़ते हैं, कहीं कड़वे पड़ते हैं। तो मनुष्यके जीवनमें प्रेम हो भगवान्से और संसारका व्यवहार करे तो संसारमें आसक्ति नहीं होगी, व्यवहारमें द्वेष नहीं होगा। क्योंकि यदि व्यवहारमें द्वेष करेंगे तो भी भगवान् भूल जायेंगे और व्यवहारमें आसक्त हो जायेंगे तो भी भगवान् भूल जायेंगे, इसलिए हृदयमें भगवान्को रखकर अपने मनको उनके पास जोड़कर जैसे सामने व्यवहार आवे वैसे करते जाना चाहिए।

अब हम आपको ले चलते हैं वहाँ। शरद ऋतु है, चाँदनी रात है, मन्द मन्थर गति से यमुना जी बह रही हैं, बालुकामय पुलिन है, शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु है, गोपियाँ श्रीकृष्णके विरहमें अत्यन्त पीड़ाका अनुभव करके तन्मय हो गयी हैं और मन ही मन उन्हींसे बोल रही हैं। अद्भुत बात है कि गोपीगीतमें श्रीकृष्ण सामने नहीं हैं, परन्तु गोपियाँ श्रीकृष्णसे ही बात कर रही हैं। उनको ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण हमारे पास ही हैं, हमारी सुन रहे हैं हमारी बात सुनकर उसका उत्तर भी दे रहे हैं। मध्यम पुरुषमें ही सारी-की-सारी बातचीत गोपियोंकी है, तुम, तुम, तुम।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
रहसि संविदं या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि॥

प्यारे तुम्हारी वह हँसी, स्मित, हसित, विहसित-प्रहसित, वह अट्टहास; हँसीके भेदोंका वर्णन नाट्यशास्त्रमें होता है। जब तुम हँसते हो, ठठाकर हँसते हो, ऐसा लगता है कि हमारा ध्यान दूसरी तरफ है, उसको तुमने अपनी तरफ खींच लिया। जब हमारी आँख उठती है तुम्हें देखनेके लिए तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हारी प्रेमकी दृष्टिसे हमारी दृष्टि मिल जाती है। हम देखते हैं तुम्हारो चितवनमें बड़ा प्रेम है। और, उस समय जब तुम किसी सखाको अपने हृदयसे लगाते हो या उसके कन्धेपर हाथ रखते हो या नृत्यकी मुद्राएँ प्रकट करते हो 'विहरणं च ते' तभी याद आती है, उसका ध्यान होता है और मंगल ही मंगल मालूम पड़ता है। यदि कहीं एकान्तमें मिल जाते हो और कुछ बोल देते हो "रहसि संविदो या हृदिस्पृशः" वह तुम्हारी बोलन जाकर हृदयको गुदगुदा देती है, छू लेती है, उसमें गड़ जाती है।

कठोरा भव मृद्वीका प्राणास्त्वमसि राधिके।
अस्ति नान्या चकोरस्य चन्द्ररेखां विना गति ॥

तुम चाहे कठोर बनो चाहे कोमल बनो, तुम मेरी प्राण हो। चकोरको जैसे चन्द्रिकाके सिवाय और कोई गति नहीं है, वैसे मेरे लिए तुम्हारे सिवाय कोई गति नहीं है। जब तुम एकान्तमें ऐसे खड़े हो जाते हो, तो वह तुम्हारी मधुर वाणी हृदयमें चुभ जाती है। लेकिन तुम हो कपटी, हम तो भोली-भाली गाँवकी ग्वारिन और तुम हो कपटी। 'कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि'—वे बातें आ-आकर हमारे मनको क्षुब्ध कर रही हैं। अद्भुत है प्रीतिकी रीति, जहाँ भगवान्‌के साथ जाकर लोग सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं, वहाँ कृष्णके पास आकर शोकका अनुभव करते हैं! प्रेम शान्ति नहीं है। ज्ञानकी शान्त अवस्थाका नाम तो समाधि है। यह तो ज्ञानकी विक्षिप्तावस्था है। विक्षिप्त माने जैसे नाचते हैं, हाथ चलता है? आँख चलती है, भौंह चलती है, कमर चलती है? पाँव चलता है।

योगियोंने विक्षेपको दुःख बनाकर छोड़ दिया और भक्तोंने विक्षेपको सुख बनाकर अपना लिया। यह भक्तिकी है महिमा कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह विक्षेपको भी परमानन्द बना लेती है। वहाँ शयन परमानन्द हो जाता है, वहाँ नर्तन भी परमानन्द हो जाता है। विक्षेप भी परमानन्द हो जाता है। क्योंकि सब कुछ अपने प्यारेके लिए, अपने प्रभुके लिए होता है। कर्म स्वयं भी पवित्र होना चाहिए और उसका उद्‌देश्य भी पवित्र होना चाहिए। कर्ता भी, अधिकारी भी पवित्र होना चाहिए। परन्तु प्रेममें यदि अपना लक्ष्य, जिससे हम प्रेम करते हैं, वह यदि परमानन्द-स्वरूप है तो प्रेम भी परमानन्द है और प्रेमी भी परमानन्द ही है। यह प्रेमकी महिमा है। यह प्रेमीको ही अधिकार है कि अपने प्रियतमको कुहक, कपटी कहकर पुकार सके। बिना-प्रेमके यह बात वाणीसे निकल नहीं सकती। यह नकल करनेकी चीज नहीं है कि भाई वह तो अपने प्रीतमको, प्रीतम शब्द भी संस्कृतमें ठीक है। जैसे प्रियतम होता है वैसे प्रीतम भी होता है। हमने देखा वे अपने प्रीतमको कपटी कहकर पुकार रहे थे। हमने देखा एक प्रेमीको, अपने प्रियतम-को बेवकूफ कहकर पुकार रहे थे। प्रियतम जी बड़े खुश हो रहे थे। क्या पदवी मिली है, क्या प्रेम मिला है।

तो भगवान्‌को जब कोई कपटी कहता है तो और नाचने लगते हैं, बड़े प्रेमसे। क्यों नाचते हैं? बोले—ओहो, इसने मेरा सच्चा नाम लिया, और लोग झूठा नाम लेते हैं। क्योंकि इतना प्रेम करनेपर भी जब मैं छिपा रहता हूँ। मेरे प्रेमीने आज मेरा सच्चा नाम लेकर खुश कर दिया सुखी हो जाते हैं।

देखो गोपी कहती है—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब तुम व्रजसे निकलते हो, हाय, हाय, हम गोपियोंके पीछे-पीछे क्यों नहीं निकलते ! हमारे आगे नहीं चलते ! इन पशुओंको चरानेके लिए, पशु हैं ये, सखि ! न इनके हृदयमें नेम है न प्रेम है, न जाने कहाँ-कहाँ इनको अपने पीछे-पीछे लेकर जाते हैं। और तुम ऐसे हो कि इनके पीछे-पीछे चलते हो ! हमको तो यह ध्यान होता है कि कमलसे भी कोमल नलिनसुन्दरं, कमलसे भी सुन्दर, सुकुमार जो तुम्हारे तलवे हैं, उनमें कहीं कोई काँटा गड़ जायेगा कोई कंकड़-पत्थर लग जायेगा, कोई शिला, तृण, अङ्कुर लग जायेगा और कष्ट हो जायेगा, जब हम यह सोचती हैं तो हमारा मन भीतर ही भीतर एक द्वन्द्व-परम्परा, एक लड़ाईकी परम्परा स्थापित कर देता है।' 'कले कलहस्य लता प्रतानं'। मन कहता है यदि गायोंके पीछे-पीछे चल रहे हैं तो काँटे क्यों नहीं गड़ेंगे पाँवमें ? गौयें क्या रास्ता देख-देखकर चलती हैं कि कहाँ चलना होगा। पर गौयें नहीं देखती होंगी ? अरे ! कृष्ण देखते तो होंगे, परन्तु कहीं चूक जायें तो ? कितने कष्टकी वह बात होगी, तुम तो जाते हो गाय चरानेके लिए और हमारे मनमें एक लड़ाई छिड़ जाती है।

दूसरी गोपीने हिला दिया, अरे क्या सोच रही है बावरी ? प्यारेकी बात सोच रही हूँ। प्यारा क्या है ? कान्त है। 'कस्य सुखस्य अन्तः निष्ठा'—उससे बड़ा सुख हमारे जीवनमें कोई नहीं है। उसका कभी गर्म हवा न लगे, यह सोच रही हूँ। अरे ना, ना, कान्त सुखकी पराकाष्ठा नहीं है, वह तो कान्त है। बक है। कान्त कौन है कि ककारान्त, बक शब्द है। ऊपरसे प्रेम दिखाता है भीतरसे प्रेम नहीं है। नहीं तो हमको छोड़कर क्यों जाता ? बोली—अरी सखी, तुमने तो बहुत छोटी बात कही। वह तो कान्त है अन्तक है—मौत है। हमलोगोंको मारनेके लिए जाता है कि वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब चला जायेगा तो उसके वियोगमें हम मर जायेंगी, हमें, मारनेके लिए बाहर जाता है। तो वक है, काक है अन्तक है। कुहक है। जो मर्जी आती है गोपियाँ सुना देती हैं।

प्यारे, तुम्हारे चले जाने पर हमारा मन इस तरहसे भीतर ही भीतर एक लड़ाईमें फँस जाता है। सचमुच जिस समय तुम जाते हो वनमें, हम ब्रह्माको गाली देने लगती हैं—लोक पितामह ब्रह्माको। जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्—तुम्हें देखनेवाली आँखोंमें, जिसने पलक बनायी गिरनेवाली-उठनेवाली, ये पलकें गिर-गिरकर तुम्हारे दर्शनमें बाधा डालती हैं। वह हमारी आँखोंमें पलक बनानेवाला ब्रह्मा मूर्ख है, जड़ है। उसको इतनी भी समझ नहीं थी कि गिरनेवाली पलक बनानेसे गोपियोंको कितनी पीड़ा होगी !

हमें चाहिए क्या ? एक बात है हम रोम-रोमसे यही चाहती हैं कि तुमको कोई पीड़ा न हो। यह प्रेमका सार है। जो अपने सुखके लिए सम्बन्ध होता है उसको काम कहते हैं। और जो अपने प्रियतमको सुख देनेके लिए सम्बन्ध होता है उसको प्रेम कहते हैं। श्रीचैतन्य चरितामृतमें एक प्रसङ्ग है इस बातका कि प्रेम और काममें क्या अन्तर है ? प्रेम और काममें बाल बराबर अन्तर है। जो सुखको अपनी ओर खींचता है वह काम है और जो सुखको प्रियतमकी ओर बलात् भेज देता है उसका नाम प्रेम। तो—

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारी आयु तो तुम्हारे पास है। तुम्हीं हमारी आयु हो, तुम्हीं हमारे जीवन हो, तुम्हीं हमारे प्राण हो, तुम्हीं हमारे आत्मा हो, तुम्हारे सिवाय न हमारा कोई है, न हम कुछ हैं। इसलिए जब तुम्हारे कमल-कोमल चरणको हम अपने वक्षस्थलपर रखती हैं, तो डरते-डरते रखती हैं, धीरेसे रखती हैं कि कहीं हमारी कठोर छातीसे तुम्हारे कोमल चरणको चोट न पहुँच जाय। 'तेनाटवीमटसि'–उन्हीं चरणोंसे तुम जंगलमें इधर-उधर भटक रहे हो, कहीं कोई काँटा लग जाय तो ? कुश लग जाय तो ? कोई कंकड़-पत्थर लग जाय तो ? हम तो ऐसी मरी हुई हैं और तुम अपनेको दुःखी इसलिए कर रहे हो कि हम और दुःखी हो जायँ ? हमारी बुद्धि स्थिर नहीं है, डाँवाडोल हो रही है, हम जीयें कि मरें, इसका भी निश्चय नहीं हो रहा है।

इसको महाभाव कहते हैं, प्रेमकी स्थितियोंमें। प्रेमकी भूमिकाओंमें इसका नाम महाभाव होता है। जो कभी टूटे नहीं, उसका नाम होता है प्रेम।

आसृष्टेरक्षयिष्णुं हृदयविधुमणिद्रावणं वक्रमाणं
पूर्णत्वेप्युद्वहन्तं निजरुचिघटया साध्वसं ध्वंसयन्तम्।
तन्वानं शं प्रदोषे धृतनवनवतासं पदं मादनत्वात्
अद्वैतं नौमि राधादनुजविजयिनोरद्भुतं भावचन्द्रम्।।

'आसृष्टे रक्षयिष्णु'। ऐसा भाव, ऐसा सम्बन्ध, जिसके टूटनेकी कभी शंका न हो, प्रेम बोलते हैं उसको। उसको प्रणय बोलते हैं, स्नेह बोलते हैं, जिसमें हृदयका चन्द्रकान्तमणि पिघल जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वक्रमाणं पूर्णत्वेप्युद्वहन्तं

थोड़ा टेढ़ा चलता है, उसको मान कहते हैं। प्रेम, स्नेह, प्रणय, मान और निर्भयता। प्रेममें किसीका कोई भय नहीं। और, जहाँ प्रियतममें दोष दिखता है, वहाँ वह छा जाता है प्रियतमके ऊपर। दोष देखकरके छोड़ता नहीं है। दोष देखकर प्रेम घटता नहीं है, बल्कि दोष देखकर ऐसा लगता है कि इसी समय तो मेरी जरूरत है, मेरी आवश्यकता इसी समय है। अब हमारा प्रेम सेवाके रूपमें प्रकट होता है। और ऐसा रस देता है, ऐसा स्वाद देता है। सुख देते हुए, दूध पिला रहे हैं अपने प्यारेको और डर रहे हैं कि कहीं अधिक गर्म न हो, कहीं अधिक ठंढा न हो, कहीं शक्कर ज्यादा न हो, कहीं कम न हो। सेवा करते हुए भी, सुख पहुँचाते हुए भी अपने हृदयमें भय है!

फिर महाभावके बाद अधिरूढ़ महाभाव होता है। यह भूमिका है प्रेमकी। उसके दो भेद होते हैं—संयोगमें मोदन और वियोगमें मादन। जैसे जीवन्मुक्तिकी भूमिकाओंका वर्णन आता है; ऐसे हमारा शास्त्र, यह कुछ गजल नहीं है, कुछ क़व्वाली नहीं है, हमारे आलवारोंका, दक्षिणी आलवारोंका प्रेम-वर्णन, हमारे व्रजवासियोंका, श्रीचैतन्य महाप्रभुमें प्रेमका वर्णन, हरिदासजीका, हरिवंशजीका, हरिव्यासजीका : अद्भुत प्रेमके प्रसङ्ग हैं।

तो यह महाभावकी स्थिति है, जहाँ सुख देते हुए भी, अरी गोपी! तुम्हें मालूम है कि ये वक्षस्थल तुम्हारे कठोर हैं, श्रीकृष्णके कोमल चरण रखोगी, तो उन्हें पीड़ा पहुँच जायगी, फिर तुम पीड़ा देनेका काम क्यों करती हो? कि हम यह जानती हैं कि यह पीड़ा देनेमें भी उनको सुख होता है। तो प्रेमीका रोम-रोम अपने प्रियतमको सुख पहुँचानेके लिए होता है। वर्णन किया—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ।।

प्रेम गोपनीय होता है। प्रेम बाजारमें बोलनेका नहीं होता है, अखबारमें जाहिर करनेका नहीं होता है। प्रेम जितना गुप्त रहता है उतना हो बढ़ता है । यह प्रेमका स्वभाव है।

प्रेमाद्वयो रसिकयोरपि दीप एव
हृद्वेश्म भासयति निश्चल एव भाति ।
द्वाराद्वयं वदनस्तु बहिष्कृतेन
निर्वाति शीघ्रमथवा लघुतामुपैति ।।

वह तो वह दीपक है जिसको बहुरानी अपने आँचलके भीतर छिपाकर, तब यहाँसे वहाँ ले जाती है। आप लोग तो टार्च लेकर चलते होंगे, तो दीपकको वह सुकुमारता कि बाहरकी हवा न लग जाय भूल गयी होगी !

प्रेम क्या है ? हृदय-मन्दिरमें प्रज्वलित रहनेवाला दीपक है। निश्चल प्रज्वलित होता है, परन्तु जब यह मुँहके दरवाजेसे निकलता है, आँचलसे बाहर हो जाता है, तब या तो डावाँडोल हो जाय या बुझ जाय। इसीसे प्रेमिकाके रूपमें जो भी हैं, उनका नाम गोपी-गोपिका, गुपु रक्षणे—प्रेमकी रक्षा ही गुप्त रखनेसे होती है, इसलिए इनका नाम गोपिका है। माताको मालूम नहीं, पिताको मालूम नहीं, सास-ससुरको मालूम नहीं, पति-देवरको मालूम नहीं; यह भीतर क्या प्रेमामृत, क्या प्रेम मधु, क्या प्रेमरसका आस्वादन हो रहा है, एक भी गोपीका नाम श्रीमद्भागवतमें नहीं। लोग जबरदस्ती निकालते हैं, वह तो हमको भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आता है। परन्तु एक भी गोपीका नाम, न राधाका, न ललिताका, न विशाखाका, न चित्ररेखाका, न रंगदेवीका, किसी भी गोपोका नाम श्रीमद्भागवतमें नहीं है। सखाओंका नाम है। माताओंमें यशोदा रोहिणीका नाम है, पिताओंमें उपनन्दादिका नाम है, परन्तु किसी गोपीका नाम नहीं है। क्योंकि वह गोपिका हैं, भगवान्के प्रति अपने प्रेमको गुप्त रखनेवाली है। प्रेम गुप्त रखनेकी वस्तु है—

प्रेमाद्वयो रसिकयोरपि दीप एव
हृद्वेश्म भासयति निश्चल एव भाति।
द्वारादयं वदनस्तु बहिष्कृतेन
निर्वाति शीघ्रमथवा लघुतामुपैति॥

आली री प्रीतिकी रीति निराली। प्याली भरे न खाली होय। इसमें कभी पूर्णता आती नहीं और कभी रिक्तता आती नहीं। प्रेम कभी रिक्त भी नहीं होता और प्रेम कभी भरता नहीं। और-और-और जितना भी भरे खाला लगता है। यह प्रीतिकी रीति है।

इति गोप्यः प्रागायन्त्यः

जिनका स्वभाव है प्रेमको गुप्त रखना, वे ऐसी पागल हुईं कि खुलकर गाने लग गयीं।

प्रगायन्त्यः

प्रलाप करने लग गयीं। चित्रलिखी-सी हो गयीं। गोपी क्या है? आप दर्शन करें गोपीका। गोपीका मंगलमय दर्शन—

कृष्णदर्शनलालसाः।

लालसा मूर्तिमती है। लालसा एक अमूर्त वस्तु है, निराकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहती है। लालसाको किसीने देखा नहीं कैसी होती है—लाल, पीली, सफेद, लम्बी-चौड़ी, मोटी-दुबली लालसा कैसी होती है? लालसा एक अमूर्त, निराकार वस्तु है, भाव है। परन्तु उस समय ऐसा लगने लगा कि आज लालसा—कृष्णदर्शन-लालसा साकार होकर गोपियोंके रूपमें श्रीकृष्ण-विषयक गान-कर रही है। श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए व्याकुल हो रही है। सचमुच जैसी दर्शन-लालसा गोपियोंके हृदयमें है, वैसी यदि किसीके हृदयमें आजाय! यहाँ तो भगवान्‌के दर्शनकी बात आती है, आभास-आभास करते हुए जब बात करते हैं, आभास होता है, सच हमको तो बहुत दुःख होता है। भगवान्‌का दर्शन आभास है? मम्मीका दर्शन सच्चा है। हाँ, मम्मीका दर्शन भी आभास है। श्रीमतीका दर्शन भी आभास है, पति-पिताका दर्शन भी आभास है। आपको पता है आपकी मम्मी कौन है? आपका पिता कौन है? बोले—हमको पता है। पता नहीं है, किसीने बता दिया है, तुमने मान लिया है। न मम्मीका पता है, न डैडीका पता है, न भाईका पता है, न श्रीमती-श्रीमान्‌का पता है। इन आभासोंमें कैसे फँस गये? भगवान्‌के दर्शनको आभास कहते हो और इन माने हुए, बताये हुए झूठे सम्बन्धोंको सच मानते हो? यह निवृत्तिपरक लीला है, गोपियो! यह संन्यास है, यह उत्तरमीमांसा है। गोपी क्या है? श्रीकृष्ण-दर्शनकी मूर्तिमती लालसा।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामके निवारणका इससे बढ़िया उपाय कोई है नहीं शास्त्रमें।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्शृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

काम भटका रहा है, लोभ भटका रहा है यहाँसे वहाँ भटक रहे हैं। यदि इस रासके प्रसङ्गको आप अपने हृदयमें धारण कर लें तो आपके हृदयका यह रोग शीघ्रसे शीघ्र निवृत्त हो जायगा। हृदयरोग होगा ही नहीं। यह हृदयरोगकी चिकित्सा है, महौषधि है, यह रासलीला।

जब गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयीं तो उनके बीचमें श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। श्रीकृष्णका दर्शन होता है। आप तुलसीदासके दर्शनको आभास कहते हैं! सूरदासके दर्शनको आभास कहते हैं! मीराके दर्शनको आभास कहते हैं! बड़ी हिमाकत है, दुस्साहस है। भगवान्‌का दर्शन इन्हीं आँखोंसे होता है। जैसे आप सब लोगोंका, जैसे हम सबका दर्शन आँखोंसे होता है, ऐसे ही भगवान्‌का दर्शन होता है। और जितनी ममता हमें पितासे, पतिसे, पुत्रसे, मातासे, होती है उतना ही सम्बन्ध, उससे दृढ़ सम्बन्ध भगवान्‌के साथ होता है और जितना दर्शन इस संसारका हो रहा है, उससे भी ठोस दर्शन भगवान्‌का होता है। भगवान् भक्तोंके साथ हँसते हैं, बोलते हैं, खाते हैं, खिलाते हैं। आभास-आभास क्या बोलते हो तुम? हमको तो आश्चर्य होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है जब, पढ़े-लिखे लोग भी इसको आभास बोलते हैं। दुनिया आभास है। पत्नी आभास है। आपके साथ पैदा नहीं हुई है। पीछे जोड़ी गयी है। पति आभास है। वह आपके साथ पैदा नहीं हुआ, बीचमें जोड़ा गया है। वह सच्चा कैसे हो गया? माता आभास है, सिर्फ बतायी हुई है। पिता आभास है, सिर्फ बताया हुआ है। भगवान् जो हमारे हृदयेश्वर हैं, हमारे हृदयके परम धन हैं, प्रेष्ठ हैं, वे आभास कैसे? अपना आत्मा आभास है? आभास तो संसारके सगे-सम्बन्धी हैं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।

मुस्कुराते हुए, मुख-कमल प्रफुल्ल--खिला हुआ, स्मयमान --जो पहले गोपियोंको हुआ था। जिसके कारण गोपियोंने मान किया, अपनेको देखा अब वह मान गोपियोंमें नहीं रहा, कृष्णमें चला गया। अरी गोपियो! कैसा बनती थीं, कैसा परेशान करती थीं। अब बोलो तुम्हारे हृदयकी क्या दशा है? तुम्हारे मनकी क्या दशा है? सारा भेद खुल गया ना! हाँ, खुला तो बहुत बढ़िया हुआ कि संसारके लोगोंको, भगवान्से कैसा करना चाहिए, यह जाहिर हो गया। भगवान् कब आते हैं?

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

कहीं से आये नहीं, जमुनाजीमें डुबकी लगायी नहीं थी, करारके नीचे छिपे नहीं थे, पहाड़में नहीं गये थे, जंगलमें नहीं गये थे, पेड़पर नहीं चढ़े। **तासां मध्ये एव आविर्भूतः।** चारों ओर गोपियाँ और बीचमें प्रकट हो गये, चमक गये हुआ क्या? गोपीकी ओढ़नी ओढ़कर, गोपियोंके बीच ही, **आपहि अमृत आपु**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमरित घटु आपहि पीवन हारी। आपै ढूँढे आप ढुँढावे, आपे ढूँढनहारी। जब गोपियाँ कहती थीं इधर नहीं मिलेगा, तब झट ओढ़नीके भीतरसे ही बाँसुरी बजा दी। अरे यहीं है ढूँढो ढूँढो, घेर लो! पकड़ लो! निराश नहीं होने देते थे। आशाबन्धः उनकी आशा बनाये रखते थे। और जब वे ढूँढ़नेमें निराश होने लगती थीं तो झट बाँसुरी बजा देते थे, उनको पता ही नहीं चलता, यहाँ बजी वहाँ बजी, कहाँ बजी! फिर ढूँढ़ने लगती थीं। अब गोपियो! बताओ, मुस्कुराते हुए, हँसते हुए प्रकट हो गये। कैसे कृष्ण!

पर जो लोग काम-लीला बोलते हैं, श्रीकृष्णकी लीलाको, इसको तो...... काम-विजय लीला, शास्त्रमें इसका नाम काम-विजय लीला है। काम लीला नहीं है।

आपने सुना होगा स्वामी रामतीर्थ जब बालक थे, स्कूलमें पढ़ते थे। स्कूल ऋषिकुल शब्दका, ऋ का लोप हो जानेके बाद षिकुल रहा, सिकूल रहा। वह विलायत यात्रा करने एक बार गया, तो स्कूल बनके आगया। ऋषिकुलका सिर कट गया, ऋ निकल गया। तो यह विलायत-यात्रा होनेपर कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता है अपनी रहनीमें, खानमें, पानमें, परिधान-में, कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है। तो शब्दोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। तो अपनी संस्कृतिको, अपनी मर्यादाको, अपने व्याकरणको छोड़ देते हैं, विदेशमें जानेपर।

तो यह **मन्मथमन्मथः—मनो मथ्नाति इति मन्मथः। मन्मथस्यापि मन्मथ्नाति इति मन्मथमन्मथः।** हमारे मनमें जो मन्थन करता है, उसका नाम होता है मन्मथ। और मन्मथके मनको भी जो मथित कर देता है, उसको कहते हैं मन्मथमन्मथः। हाँ तो स्वामी रामतीर्थ स्कूल में पढ़ रहे थे, विद्यालयमें एक निरीक्षक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आया। उसने बोर्डपर एक लकीर खींची और बच्चोंसे कहा—हमारी खींची हुई लकीरको छूओ मत और इसे छोटी बना दो। है किसी में ऐसी बुद्धि? तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा है। स्वामी रामतीर्थ उठे, हाथमें खड़िया ली, इन्स्पेक्टरकी लकीरको तो छुआ नहीं उन्होंने। एक बड़ी लकीर बोर्डपर और खींच दी। जब बड़ी लकीर खिच गयी, तो पहलेवाली लकीर अपने आप ही छोटी हो गयी। यह हमारे मनमें, जो संसारका प्रेम है, हम तो प्रेमको प्रेम समझते ही नहीं कि क्या है! कामको ही प्रेम समझते हैं। न कोई स्कूल है प्रेम सिखानेके लिए न कालेज है। ये अनजान बेचारे नन्हें-मुन्ने बच्चे क्याको क्या समझ लेते हैं। प्रेम कैसा होता है इसकी जब बड़ी रेखा सामने आयी, ऐसा होता है प्रेम, तो ये छोटे-मोटे प्रेम अपने ही छोटे पड़ गये, फीके पड़ गये, मन्मथमन्मथः।

> तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
> पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

पीताम्बर धारण किये हुए साक्षात् मन्मथ-मन्मथ गोपियोंके बीचमें प्रकट हो गये। जो लोग शास्त्र जानते हैं, उनके लिए थोड़ा-सा, पीताम्बरधरः शब्द संस्कृतमें बोलनेको जरूरत नहीं है, पीताम्बरः कहनेसे ही काम चल जाता है। बहुव्रीहि समास—पीतं अम्बरं यस्य—जिसका पीला कपड़ा है उसको कहते हैं पीताम्बर! पीताम्बरः कृष्णः। तो पीताम्बरधरः क्यों कहा? पीताम्बर धारण करनेवाला हिन्दीमें चल जाता है, संस्कृतके पण्डित तो बालकी खाल निकाल लें: तो बोले कि श्रीकृष्णने अपने पीताम्बर-को दोनों हाथमें ले रक्खा था। जैसे कोई कर्जदार देनेवालेके सामने माफी माँगनेके लिए अपना दुपट्टा हाथमें लेकर जाय वैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही गोपियोंके सामने अपना पीताम्बर, पीताम्बरं धरति, पीताम्बर-को अपने हाथमें धारण करके, गोपियो ! हमने तुमको बहुत कष्ट दिया क्षमा करो । कृतज्ञ होकर गोपियोंके सामने उपस्थित हुए, इसको कहते हैं पीताम्बरधरः ।

जब वे गोपियोंके बीचमें प्रकट हुए तो पीताम्बरः धरायां यस्य, उनका पीताम्बर छूट करके शरीरपरसे, धरतीपर गिर पड़ा, अथवा पीतायाः पीतवर्णाया स्वर्णवर्णायाः राधायाः अम्बरं धरति— श्रीराधारानीकी साड़ी उनके शरीरपर है। अरे, यह क्या अद्‌भुत हुआ ? बदल गयी ? **पीताया—पुनः पुनः पीता धराऽमृताया—** जिनका बारबार पान किया है, उन्हींके रंगकी साड़ी धारण किये हुए हैं, साक्षान्मन्मथमन्मथः, भगवान् प्रकट हो गये ।

अब आगेकी चर्चा आपको कल सुनावेंगे ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनन्दब्रह्मविद्यामधिजिगमिषवस्तैत्तिरीया गंभीरं,
मीमांसन्ते स्म विश्वं तदुदयविलयं निर्भयास्तत्स्वरूपम् ।
कल्याणी काण्ववाणी विमृशति मधुरं वीणयन्ति च तत्त्वं;
तत्पूर्णानन्दतीर्थे मधुनि वयमयी निर्द्वंयं लीलयामः ।।

यह रासपञ्चाध्यायी श्रीधरके मतमें संन्यास-लीला है, स्पष्ट रूपमें उन्होंने यह बात लिखी है—

वस्तुतः निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायी

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चतुर्वर्ग सम्बन्धी प्रवृत्तियोंका त्याग करके ये गोपियाँ पूर्वभाग, कर्मकाण्ड, मन्त्रसंहिता जो वेदोंकी है, उससे ऊपर उठकर उपनिषदोंके समान श्रीकृष्ण परमात्मासे मिलनेके लिए जाती हैं।

यह तो श्रीधर स्वामीकी व्याख्या है। श्रीधनपति सूरिजी कहते हैं कि जैसे श्रुतियाँ—ऋचाएँ अनेक होती हैं वेदोंकी और वे बाहरसे भिन्न-भिन्न देवताओंका नाम भी लेती हैं—इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि। नाम अलग-अलग होनेपर भी—

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

एक ही परमात्माके अनेक नाम हैं, इसलिए बाहरसे आपात दृष्टिसे देखने पर मालूम पड़ता है कि श्रुतियाँ भिन्न-भिन्न देवताओंका प्रतिपादन करती हैं। परन्तु जब सूक्ष्म दृष्टिसे देखा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है, तो सब श्रुतियोंका, ऋचाओंका तात्पर्य एक ही पर-मात्मामें है।

एकं सद् विबभूव विश्वम्।
एको अग्नि: बहुधा समिध्यते।

तो ये गोपी क्या हैं? श्रुति हैं, वेदकी ऋचा हैं और वे जैसे भिन्न-भिन्न नाम-रूपका वर्णन करती हुई भी एक ही पर-मात्माका वर्णन करती हैं, वैसे गोपियाँ आपात दृष्टिसे भिन्न-भिन्न गोपोंसे विवाहित होनेपर भी, सम्बद्ध होनेपर भी एक ही श्रीकृष्णसे प्रेम करती हैं, ऐसी धनपति सूरिकी व्याख्या पूरी रासपञ्चाध्यायी-पर मिलती है। उसकी भी निवृत्तिपक्षीया टीका है। युग पक्षमें इसका व्याख्यान है, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि जो नाड़ियाँ होती हैं। वे सब जैसे सुषुम्नामें प्रवेश करके अन्ततोगत्वा पर-मात्मामें लीन हो जाती हैं, इसीप्रकार यह गोपियोंका वर्णन नाड़ियोंका वर्णन है।

वृत्ति पक्षमें जैसी व्याख्या मिलती है वह यह है; बीचमें प्रसंग-वश एक दूसरी बात भी कर देते हैं। यह जो मानते हैं कि वैदिक देवता अनेक हैं. उसका रहस्य बहुत अद्भुत है। पहली बात तो यह है कि संसारका कोई भी मजहब ईश्वरको अभिन्न निमित्तो-पादान कारण नहीं मानता है। यह केवल वैदिक-परम्परा ही ऐसी है जिसमें कुम्हार भी भगवान् और माटी भीं भगवान् है। माटीको ईश्वर माननेवाला कोई मजहब दुनियामें नहीं है। इसीसे उनको ईश्वरको एक कोनेमें रखना पड़ता है। ईश्वर केवल निराकार है, कर्ता है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्ति है, सब कुछ ठीक है, लेकिन वही सब है, यह हमारी वैदिक परम्पराके अतिरिक्त और कहीं भी माना हुआ नहीं है। इसका फल यह हुआ कि संसारमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कुछ भी है, यही चलते-फिरते, खाते-पीते-बोलते, सब परमेश्वरका स्वरूप है। यदि हम और मजहबोंके समान ऐसा मान लें, जैसा कि इस्लाममें और क्रिश्चियनोंमें, यहूदियोंमें, पारसियोंमें, सिखोंमें, आर्यसमाजियोंमें ईश्वर केवल निराकार है। वह जगत्का कर्ता तो है, परन्तु उपादान–मैटर नहीं है, ऐसा मान लें तो फिर, मूर्तिपूजा नहीं हो सकती। परन्तु वैदिक सम्प्रदायकी विशेषता यह है कि सबका उपादान–मसाला वही है, वह कोई एक कोनेमें पड़ा हुआ केवल निराकार एकांगी नहीं है।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजसे किसीने पूछा कि महाराज; ईश्वर तो निराकार है ना ? तो बोले कि तब साकार क्या तेरा चच्चा है ? ईश्वर अगर निराकार ही है तो फिर साकार क्या है ? तेरा चच्चा है ? ऐसा बोलते थे वे। उनकी बोली, उनकी रहनी ऐसी थी !

तो यह सिद्धान्त न समझनेके कारण जो लोग बहुदेववादी कह-कहकर वैदिक-धर्मपर आक्षेप करते हैं, वे तो वैदिक-धर्मका क ख भी नहीं समझते हैं। हमारे सर्वरूपमें परमेश्वर है।

'न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया
स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ।'

कोई जेवर बन जानेके कारण सोनेका परित्याग नहीं करता है। कोई ढेलेके रूपमें होनेके कारण या घड़ेके रूपमें होनेके कारण माटीका परित्याग नहीं करता है, इसी प्रकार जो सर्वात्मा भगवान् है, सर्वस्वरूप, वह किसी भी रूपमें हो, बेल हो, पीपल हो, सभी रूपमें पूज्य है। शालग्राम हो, नर्मदेश्वर हो, पार्थिव मूर्ति हो, जल हो, अग्नि हो, वायु हो, आकाश हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूरसि भूमिरसि। जलमासीत् आप्रचेतेदं आपोविष्ठा। अग्नये नय सुपथारायै। अग्निमीले पुरोहितं। वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। कं ब्रह्म। खं ब्रह्म। मनो ब्रह्म। विज्ञानं ब्रह्म। आनन्दो ब्रह्म।

ब्रह्मातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है। सब विशुद्ध सोना है। सब विशुद्ध माटी है। सब विशुद्ध लोहा है।

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

तो ये जो वृत्तियाँ हैं, जबतक इनका ईश्वर एकान्तवासी, निराकार, पहुँचसे बाहर, परोक्ष कोई अज्ञात वस्तु रहेगा, तब तक हमारी वृत्तियाँ उसके साथ रास नहीं कर सकतीं। तो जब यह ज्ञान होता है कि परमात्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

हम कभी-कभी वृन्दावनसे बाहर रासपञ्चाध्यायीकी कथा करनेमें संकोच करते हैं पर यहाँ तो सिर्फ पाँच दिन बोलना है, सो भी हो गया, नहीं तो बरसोंतक इसकी व्याख्या की जाती है। इस समय रासपञ्चाध्यायीपर कम-से-कम साठ-सत्तर संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। तो कभी-कभी जो लोग थोड़ा सत्सङ्ग करते हैं, उनके बीचमें बोलनेमें संकोच भी होता है।

श्रीमद्भागवतका कहना है कि पाँच बातें अज्ञानमूलक हैं। एक ही श्लोकमें यह बात कही गयी —

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां
विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः।
त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता
त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक वे जो लोग समझते है कि मोक्ष आत्माका स्वरूप नहीं है, साधन करनेसे मोक्ष पैदा होता है, वे गलत समझते हैं। जो लोग समझते हैं कि वन्धन सच्चा है और कुछ करनेपर उसकी निवृत्ति होती है, वे भी गलत समझते हैं गलत। जो लोग समझते हैं कि बन्धन सच्चा है और कुछ करनेपर उसकी निवृत्ति होती है, वे भी समझते हैं गल्त। जो लोग समझते हैं कि शरीरमें भेद दिखायी पड़ता है, इसलिए आत्मा भी अनेक है, उनकी समझ गलत है। घड़ा अलग-अलग होनेसे माटी अलग-अलग नहीं होती। घड़ा अलग-अलग होनेसे आकाश अलग-अलग नहीं होता। कोई तरंग अलग-अलग होनेसे जल नहीं अलग होता। धूलिकण अलग-अलग होनेसे मृत्तिका अलग नहीं होती। लपटें अलग-अलग होनेसे आग अलग नहीं होती। झोंके अलग-अलग होनेसे पूर्व-पश्चिमकी, वायु अलग नहीं होती। आकाश अलग-अलग नहीं होता, दिशा अलग अलग नहीं होती, काल अलग-अलग नहीं होता। कोई भी तत्त्व केवल नाम-रूपके भेदसे अलग-अलग होता ही नहीं। तो आत्मा एक तत्त्व है, कोई कल्पना नहीं है, भावना नहीं है, यह कोई मनका आरोप नहीं, दृश्यके पृथक्-पृथक् होनेसे भी आत्मतत्त्व पृथक्-पृथक् नहीं होता। जो लोग मानते हैं कि अलग है, उनका ज्ञान गलत है।

विपणमृतं स्मरन्ति—जो लोगोंके देने-लेनेका व्यापर है, उसमें पिछले जन्म, अगले जन्म, नरक-स्वर्ग सबका समावेश हो जाता है, कर्मफल; वे केवल अध्यारोपसे आत्माका ज्ञान होनेके लिए, उसका वर्णन करते हैं कि वह देह नहीं है, देहसे अतिरिक्त है और आत्मा-तमोगुणी है, रजोगुणी है, सत्त्वगुणी है—ऐसा जो मानते हैं, वे भी गलत मानते हैं। परमात्मा, जो आत्माका स्वरूप है, वह इन सबसे विलक्षण है। वह इनसे विलक्षण है पर उससे विलक्षण कुछ नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्रमयति भारतो त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ।

जो संसारमें आसक्त लोग हैं, उनको भगवान्‌की, वाणी, विवेक देनेके लिए, वुद्धि देनेके लिए, स्वयंका विचार देनेके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णन करती है। तो ये जो हमारी वृत्तियाँ हैं, ये जब अज्ञानसे मुक्त होती हैं, बन्धनसे मुक्त होती हैं, तो इनमें रासका उदय होता है। अज्ञानसे मुक्त होकर शुद्ध विज्ञान-जगत्‌में, विज्ञान-रूप जगत्‌में रासका आविर्भाव होता है। तब हमारी एक-एक वृत्ति भगवान्‌को ही विषय करती हैं। भगवान्‌के सिवाय और कुछ नहीं। यह देखो श्याम, यह देखो श्याम। सर्वत्र भगवान्‌का दर्शन होने लगता है।

तो वेदान्तकी दृष्टिसे, योगकी दृष्टिसे? संन्यासकी दृष्टिसे और साहित्यिक दृष्टिसे और उपवेद जो हैं—गान्धर्ववेद, उनकी दृष्टिसे। तो वाद्य है, संगीत है, नृत्य है, अभिनय है। ये तो हमारे गान्धर्ववेदके, उपवेदके ये स्वर हैं और यदि चारोंको परमात्माके साथ जोड़ दिया जाये, बजावें परमात्माके लिए, गावें परमात्माके लिए, नाचें परमात्माके लिए, अभिनय करें परमात्माके लिए और उनकी बाँसुरी सुनें।

उपादानके रूपमें, माने, जिस चीजसे यह दुनिया बनी है, उस तत्त्वके रूपमें जब परमात्माको जानेंगे, तब आपकी वृत्तियोंमें अपने आप ही रास होने लगेगा।

शान्त ज्ञानका नाम समाधि है और सर्व भगवद्-रूप है। यह ज्ञान हो जानेपर ज्ञानका जो थिरकना है; समाधिको जो जो निरपेक्षता, समाधिकी कोई आवश्यकता ही नहीं, न जंगलमें जानेकी जरूरत, न पहाड़में जानेकी जरूरत, न आँख बन्द करनेकी जरूरत, न कुछ यहाँ-वहाँ करनेकी जरूरत! आओ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाई, हमारा ज्ञान नाच-नाचकर सर्वके रूपमें परमात्माको देखता है। यह थिरकते हुए, नृत्य करते हुए ज्ञानका नाम रास है। यह ज्ञानात्मक नृत्य है। यह ज्ञानमें आनन्दका उल्लास है। इस विज्ञान-सृष्टिमें आनन्दका उल्लास है। इस विज्ञान-सृष्टिमें आनन्दोलासका नाम रास है।

आपने देखा कैसे पूर्व मीमांसाका कृष्णने पक्ष लिया, गोपियोंने उत्तरमीमांसासे खण्डन किया, भगवान्की रूप-महिमाका वर्णन किया, उनके साथ रास किया, अहंभावका उदय होनेपर भगवान्में परोक्षता आयी, देहाभिमानीकी दृष्टिसे भगवान् परोक्ष हो जाते हैं; उन्हें पीड़ा हुई, उन्होंने अनुसन्धान किया, तन्मय हो गयीं, मार्ग मिला, राधारानी मिली; गोपीगीतका गान हुआ –

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

हम तुम्हें सुख देनेके लिए जब कोई काम करती हैं, तो उसमें भी तुम्हें कहीं दुःख न पहुँच जाये, यह महाभावकी वृत्ति बनी रहती है।

श्रीकृष्ण प्रकट हुए, एकने हाथ पकड़ लिया बड़े प्रेमसे, दूसरेने उनकी बाँहें अपने कन्धेपर रख लीं। अलग-अलग वर्णन है। किसीने उनके पाँवको पकड़ लिया, कोई टेढ़ी नजरसे उन्हें देखने लगी, कोई अलग बैठकर ध्यान करने लगी, कोई कृष्ण-कृष्ण करने लगी। अब वृत्तियोंके बीचमें, गोपियोंके बीचमें यह हैं श्रीकृष्ण और सर्वरूपसे वृत्तियाँ उनको विषय कर रही हैं। यह रासका एक पूर्वरूप प्रस्तुत हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपियाँ उनके सामने आगयीं, अब उन्होंने जो ओढ़नी ओढ़ रक्खी थी, आवरण था उनके शरीरपर, पर्दा यह विकारोंका पर्दा नहीं है, संस्कारोंका पर्दा है। विकारमें पर्दा नहीं होता है ! विकार तो नंगा नचाता है, नंगे पशु हैं, पक्षी हैं। संस्कार डाल-डालके पर्दा दिया गया है। जब विवेकके द्वारा, प्रेमके द्वारा, जब यह पर्दा हट जाता है, उस पर्देके ऊपर भगवान् बैठ जाते हैं ! गोपियोंका वही वस्त्र जो उनके आँसूसे भीगा हुआ था, जिसपर उनका काजल लगा हुआ था, जिसपर उनके वक्षस्थलका चन्दन लगा हुआ था, वही पहना हुआ वस्त्र गोपियोंने बिछाया और उसके ऊपर भगवान् विराजमान हो गये।

मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।

श्रुतियोंको अपने मनोरथका अन्त मिल गया—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सबका जो फल है—रसब्रह्म उसकी प्राप्ति हो गयी। बोले कि जैसे सन्त पुरुष परमात्माकी प्राप्ति करके आनन्दमें मग्न हो जाते हैं, वैसे गोपियाँ आनन्दमग्न हो गयीं।

अब आया जिज्ञासाका समय। जबतक दुनियाके बारेमें जिज्ञासा करते हैं, बुद्धि जबतक छोटी चीजको पकड़ती है, तबतक बुद्धि छोटी रहती है। बुद्धि जब बड़ी चीजको पकड़ती है वह बड़ी हो जाती है। बुद्धिमें लम्बाई-चौड़ाई नहीं होती। बुद्धिकी उम्र भी नहीं होती। बुद्धिमें वजन भी नहीं होता, बुद्धि लाल, काली, पीली भी नहीं होती। वह जिसके बारेमें विचार करती है, वही हो जाती है। बुद्धि आपकी कितनी बड़ी ? कि जितनी बड़ी चीजका आप विचार करते हैं। जातिका विचार करते हैं तो उसके बराबर, मज-हबका विचार करते हैं तो उसके बराबर, प्रान्तका विचार करते हैं तो उसके बराबर। राष्ट्रका विचार करते हैं तो उसके बराबर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भौतिक वस्तुका विचार करते हैं तो उसके बराबर और एक अद्वितीय पूर्ण वस्तुका जब विचार करते हैं तो स्वयं पूर्ण। असलमें बुद्धिका विषय ही बुद्धिका आकार है।

गोपियोंने चारो ओरसे कृष्णको घेर लिया, किसीने पाँव पकड़ा, किसीने हाथ पकड़ा, बहुत प्यार किया, अब कहाँ जाओगे? अब हमारे एक प्रश्नका उत्तर दो। यह प्रश्नोत्तर आगया है। प्रश्न क्या है? आपलोग बहुत सरल रूपमें उसको समझ सकते हैं। सीधा-सादा प्रश्न है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रेम न करनेपर भी प्रेम करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेवाले और न करनेवाले दोनोंसे प्रेम नहीं करते हैं। गोपियोंने पूछा—कृष्ण! हमारे प्रश्नका उत्तर दो, इन तीनोंमें कौन-सा अच्छा है। प्रश्न तो स्पष्ट है बिल्कुल प्रेम करनेवालेसे प्रेम करना अच्छा है कि प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करना अच्छा है कि दोनोंसे प्रेम न करके असङ्ग रहना अच्छा है? असंगताकी बात मैंने अपनी ओरसे कह दी, गोपियोंका अपना दृष्टिकोण दूसरा है।

श्रीकृष्णने कहा कि प्रेम करनेवालेसे प्रेम करना यह तो एक संसारी व्यवहार है! हमने देखा गृहस्थोंके यहाँ उनके यहाँ ब्याह था तो हमारे घर कितने लड्डू भेजे? चार तो लिख लो। जब हमारे घरमें ब्याह होगा तो हम उनके घरमें भी चार लड्डू भेज देगें। **भजन्त्यभजतो ये वै,** बताया **स्वार्थकान्तोद्यमा हि ते। न तत्र सौहृदं धर्मः**—यह न तो कोई प्रेम है, न धर्म है। यह तो एक प्रकारका व्यापार है।

अच्छा, यह लौकिक गति है। प्रेम करनेवालेसे प्रेम करना यह लौकिक गति है। प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करना? प्रेम करनेवालेसे तो करना ही, जो नहीं करता है उससे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी प्रेम करना। प्रेम सूर्यकी रोशनी है, जो कालेपर भी पड़ती है, गोरेपर भी पड़ती है। प्रेम चाँदनी है, जो चकोरपर भी पड़ती है और आँख बन्द किये हुए कौएपर भी पड़ती है और रात को आँख खोलके उड़ते हुए उल्लूपर भी पड़ती है और चमगादरपर भी पड़ती है। प्रेम तो वह चाँदनी है जो यह नहीं देखता कि किसपर पड़ना चाहिए, वह तो अपना स्वभाव है, शील है। जो अपने सामने आया उसको अपने प्रेमसे तर कर दिया। हाँ तो ऐसा प्रेम कौन करता है? वैसे प्रेमके उदाहरणमें बताया कि माता अपने पुत्रपर ऐसा ही प्रेम करती है। पिता अपने पुत्रपर ऐसा ही प्रेम करता है। पुत्र प्रेम करे कि न करे, माता-पिता तो करते ही हैं, उसका भला चाहते हैं। और सन्त भी ऐसा ही करते हैं। भले उनसे कोई प्रेम करे कि न करे—सबका हित चाहते हैं। जैनधर्ममें है कि किसीको दुःख नहीं पहुँचाओ। चाहे वह दोस्त हो, न चाहे वह दुश्मन हो, अहिंसा अपना धर्म है।

बौद्धोंने कहा कि चाहे कोई अच्छा हो, चाहे कोई बुरा, करुणा करो। दयासे द्रवित हो जाओ। सनातनधर्मियोंने कहा कि चाहे कोई कैसा भी हो, सबका हित करो। आपरेशन करते हो तो, और मक्खनकी मालिश करते हो तो। हित-प्रधान सनातनधर्म है, करुणा-प्रधान बौद्ध धर्म है, अहिंसाप्रधान जैन धर्म है। इनका तारतम्य है। अहिंसामें दुःख न पहुँचाना, करुणामें द्रवित हो जाना और हित। सावधान बुद्धिपूर्वक करुणा करनेसे हित होता हो तो करुणा करो, और निष्ठुर होनेसे हित हो तो निष्ठुर भी हो जाओ। अहिंसासे हित हो तो बहुत बढ़िया, नहीं तो हिंसासे भी हित हो। हम हित चाहते हैं, सामने वालेकी भलाई हो। यह धर्मकी विशेषता है। तो माता-पिताका और सन्तोंका यह स्वभाव है कि चाहे कोई प्रेम करे कि न करे, वे सबका भला चाहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब तीसरा प्रश्न आया कि कुछ ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेवाले और न करनेवाले दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते।

कृष्णने कहा—बात तो सही है गोपियो! ऐसे लोग होते हैं। पर कौन होते हैं? कृष्णने बताया—

आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः।

चार तरहके लोग होते हैं जो प्रेम करनेवालेसे भी प्रेम नहीं करते। अब मान लो कोई बाबाजी हैं और उसको कोई रोटी खिला दे और वे कृतज्ञ हो जायँ। अब रोज-रोज रोटी खिलानेवाले नये-नये मिलेंगे, तो बाबाजी क्या रहेंगे? वे तो कृतज्ञताके भारसे दब जायेंगे। वे जानते हैं कि खिलानेवाला एक है। उसी एकसे प्रेम करते हैं। बाबासे मैंने एक दिन पूछा, इतने लोग आगये, सैकड़ों लोग एकाएक आगये, इनको रोटी कहाँ से मिलेगी? बोले— वे सब अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आये हैं। हम खिलानेवाले नहीं हैं।

एक बार हम उनके साथ यात्रा कर रहे थे। बोले—बस, आज सब जंगलमें बैठ जाओ। कुएँपर स्नान करो, पेड़के नीचे सब बैठ जाओ। आज भूखे रहना पड़ेगा। महाराज; दोपहरको बैल-गाड़ीपर लदके पूरी-मिठाई आयी। बाबाने पूछा - कहाँसे लाये? बोले - ब्याह था महाराज! तो बारातवाले आये ही नहीं। अब हम ले जा रहे हैं किसी स्कूलमें बाँटनेके लिए, तो महात्माओंको भी खिला दें। मिल गयी। सबका प्रारब्ध था उसमें।

हम तो ऐसे घूमते-फिरते पैदल जब-जब चले हैं, वृन्दावनसे हरद्वार गये, उत्तर काशी गये, गंगोत्री गये, रोटी मिलती गयी, लौटते आये, रोटी मिलती गयी। हजारों मीलकी यात्रा की पैदल, एक दिन भी ऐसा नहीं हुआ, जिस दिन भूखे रहे हों। एक पैसा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकर नहीं चले और सारे भारतवर्षकी यात्रा कर आये। तो यह तो एक अभिमान ही होता है कि हम देने-लेनेवाले हैं।

आत्मारात्मा ह्याप्तकामा

जो लोग आत्माराम हैं, समाधिस्थ हैं, वे प्रेम करनेवाले न करनेवाले दोनोंसे प्रेम नहीं करते हैं।

आप्तकामा

जिनको कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है, कृतकृत्य हैं, व्यवहारमें हैं, वे भी किसीसे प्रेम नहीं करते, न करनेवालेसे, न ना करनेवालेसे।

और, कोई-कोई ऐसे होते हैं, जो हमसे कोई प्रेम करता है इस बातको समझ ही नहीं पाते। प्रेमीको पहचानना थोड़ा मुश्किल जरूर होता है। लोग झूठ-मूठ समझ बैठते हैं कि यह हमारा प्रेमी है, यद्यपि सब अपने आपसे ही प्रेम करते हैं।

तो नासमझ जो हैं वे भी प्रेम करनेवालेसे, न करनेवाले, किसीसे प्रेम नहीं करते। अच्छा भाई, कोई ऐसा है जो समझता है? बोले—वह भयंकर अपराधी है, जो किसीसे प्रेम नहीं करता—

गुरुद्रुहः गुरुयथा स्यात् तथा द्रुह्यन्ति।

भयंकर अपराधी लोग भी किसीसे प्रेम नहो करते।

अब गोपियोंकी आँख आपसमें मिली कि कृष्ण कौन हैं? समाधिस्थ हैं? अच्छा तो ये कृतकृत्य हैं? क्या कृतकृत्य हैं, माखनके लोंदेके लिए घर-घर चोरी करते हैं, कैसे कृतकृत्य हैं? अच्छा तो समझते ही नहीं होंगे कि हमसे कौन प्रेम करता है। तो बोले कि सो बात नहीं है। बाँसुरी बजाते हैं, नाम लेते हैं, बुलाते हैं। तब? आपसमें गोपियोंने कहा—यह भयंकर अपराधी है, जो हमारे जैसी प्रेम करनेवालीको भी प्रेम नहीं करता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णने कहा—नहीं गोपियो, हम तुम्हें अपने हृदयकी बात सुनाते हैं।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथा धनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥

सखियो; सखि उसको कहते हैं जिसका नाम जुड़ जाये प्यारेके साथ, जैसें गोपीजनवल्लभ, राधारमण। गोपी और कृष्णका नाम तो एकमें जुड़ गया ना!

सहैव ख्यायते इति।

जिसकी ख्याति बिल्कुल साथ-साथ होवे।

सखियो! मेरा नाम तो तुम्हारे साथ वेदोंने जोड़कर रक्खा है। गोपालतापनी उपनिषद्का मन्त्र जो है—

कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय ।

तो तुम सखि हो, मैं सखा हूं।

हम तुम एक कुञ्जके सखा।

तो फिर छिपे क्यों? इतना सताया क्यों? मैं कभी-कभी ऐसा करता हूं। क्यों करते हो? कि एक गरीब आदमी था: उसके पास कुछ नहीं था। उसको कुछ मिल गया। बहुत खुश हुआ, छिपाके रक्खा। लेकिन एक दिन वह खो गया। तो पहले जब वह बिना धनके था, तब धनकी चिन्ता उसको नहीं होती थी। परन्तु जब मिलकर खो गया, तो वह धनकी चिन्तामें इतना व्याकुल हो गया कि उसको अपने पत्नी, पुत्र, शरीर तकका ख्याल नहीं रहा। तो क्या हुआ? धन मिला था बाहर, लेकिन खोनेके बाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह भीतर घुस गया। तो मैं तुमको मिला था बाहर और जब मैं छिप गया, अन्तर्धान हो गया तो तुम्हारे भीतर घुस गया। तो तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करनेकी मैंने युक्ति की—

भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्त।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन् निभृतो न वेद।

कृष्ण यह बात हम तुम्हारी कैसे मानें? तो यों मानो कि तुम्हारे प्रेमको हम कितना समझते हैं।

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबला:।
मया परोक्षं भजतां तिरोहितं
मासूयितु माहंतत्प्रियं प्रिया:॥

तुम लोगोंने मेरे लिए लोक छोड़ा, लौकिक सम्बन्ध छोड़े, धन-दौलत छोड़ी, मान-प्रतिष्ठा छोड़ी, इज्जत छोड़ी, मेरे लिए वेद छोड़ा, लोक छोड़ा, परलोकको प्राप्त करानेवाला धर्म छोड़ा, अपने स्वजनोंको छोड़ा, अपने शरीरको छोड़ा, श्रृंगारको छोड़ा: तब, तुमने फिर हमको क्यों छोड़ा?

मय्यनुवृत्तये

मैं तुम्हारी एक-एक वृत्तिमें, तुम्हारे एक-एक संकल्पमें, एक एक-एक विचारमें भर जाऊँ, इसके लिए मैं अन्तर्धान हुआ। **मया परोक्षं भजता** भीतर-भीतर मैं तुम लोगोंसे प्रेम कर रहा था और बाहर बाहरसे अन्तर्धान हो रहा था। उसमें मेरा कोई दोष नहीं है, तुम लोग मुझे दोष मत लगाओ, मैं तो तुमसे प्रेम कर रहा था।

अच्छा सुनो गोपियो, अपने हृदयकी बात तुमको कहता हूँ, अपना दिल खोलकर तुम्हारे सामने रखता हूँ—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥

देखो गोपियां, दो-चार, दस-सौ बरस की तो बात ही क्या ? यदि मैं अनन्त आयु ग्रहण करके और तुम लोगोंकी सेवा करता रहूँ, तो भी मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता; गोपियो ! मैं तो तुम्हारे प्रेमका, तुम्हारी सेवाका कर्जदार हूँ । तुम्हारा हाथ ऊपर, हमारा हाथ नीचे । माखन खिलानेमें भी तुमने अपने हाथको ऊपर रक्खा, हमारा हाथ नीचे रहा । खाने-पीनेमें, मिलने-जुलनेमें, मैं तुम्हारा चोर बना, मैं तुम्हारा जार बना । जो-जो कुछ तुमने बनाया वह मैं बना, परन्तु मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता ।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां—तुम्हारा प्रेम निर्दोष है, निर्मल है, सच्चा है, उससे मैं कभी उऋण हो नहीं सकता और होना चाहता भी नहीं । तो मैं तो तुम्हारा ऋणी । चाहे मेरी आयु कितनी भी लम्बी हो जाये, गोपियो ! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ ।

अब गोपियोंका दिल खिल गया, सारे आवरण भङ्ग हो गये । पहला रास प्रारम्भ हुआ, बीचमें एक कृष्ण और चारों ओर गोपियाँ । एक कृष्ण बाँसुरी बजाते हुए बीचमें नृत्य कर रहे हैं । उनके कुण्डलकी लटक, उनके मुकुटकी लटक, उनके पीताम्बरकी फहरान, उनकी भौंहोंका संचालन, उनकी चितवन, उनकी मुस्कान, उनके पाँवकी पटकन, अत्यन्त स्फूर्ति श्रीकृष्णके नृत्यमें, ज्ञानात्मक हैं ही, अतः इतनी स्फूर्ति है कि सहस्र-सहस्र गोपियाँ यह समझती हैं कि मेरी ओर देखकर मुस्कुरा रहे हैं । मुस्कान मेरी ओर है, चितवन मेरी ओर है । जो पाँवके नूपुर बज रहे हैं, मेरे स्वरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथ ताल दे रहे हैं। प्रत्येक गोपीको ऐसा अनुभव हो रहा है। एक कृष्ण और शत-शत, सहस्र-सहस्र गोपी 'वनिता शतकोटि विलाकुलता'; हमारी वृत्तियाँ अनेक श्रीकृष्ण एक।

इसके बाद दूसरा रास प्रारम्भ हुआ। वह क्या हुआ? गोपियों-ने घेरके तो रक्खा ही था कि अब बाहर भाग न जायें। अब सब गोपीको यह अनुभव होने लगा कि मेरे कन्धेपर श्रीकृष्णका हाथ है। दो गोपी बीचमें, एक कृष्ण। फिर दो गोपी फिर एक कृष्ण। फिर दो गोपी, एक कृष्ण। एक कृष्णका हाथ अपने दोनों ओरकी गोपियोंपर और अपना हाथ मिलाकर मण्डलाकार नृत्य कर रही हैं।

यदि प्रत्येक गोपीके साथ हों श्रीकृष्ण, तो रसाभास हो जायगा, दो कृष्ण कैसे? अब दो गीपी एक कृष्ण, दो गोपी एक कृष्ण, रास होने लगा। जब रासमें इतनी तन्मयता आगयी, कौन देखे दूसरेको? तब जितनी गोपी उतने कृष्ण।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।

जितनी गोपियाँ उतने कृष्ण। प्रत्येक गोपीको यह अनुभव हो रहा कि श्रीकृष्ण मेरे साथ नृत्य कर रहे हैं।

पहले एक कृष्ण अनेक गोपी—इसको हल्लीसक नृत्य बोलते हैं। नाट्य शास्त्रमें इस नृत्यका नाम हल्लीसक नृत्य है, फिर दो गोपी एक कृष्ण फिर एक-एक गोपीके साथ एक-एक कृष्ण।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

—जैसे घनघोर घटा छायी हुई हो आकाशमें, और उसमें बिजली कौंध रही हो, वैसे कृष्ण कृष्ण कृष्ण, रसवर्षी मेघकी काली घटा और गोपियाँ कैसी ? कि जैसे बीच-बीचमें बिजली चमक रही हो। 'पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः पाँवकी पटकन बोलते हैं, स्वरसे, तालसे। 'भुजविधुतिभिः' हस्तक देना। यह भाषा है, नृत्यकी भाषा होती है। जैसे हम लोग जीभको नचाकर एक बोली बोलते हैं, वैसे नृत्यमें अपने अङ्गको नचाकर एक बातचीत की जाती है। हाथको ऐसे-ऐसे करते हैं, मना करनेकी मुद्रामें उसका अर्थ होता है मत आओ, हट जाओ। पर ऐसे-ऐसे (बुलानेकी मुद्रामें) करते हैं, उसका अर्थ होता है आजाओ।

तो यह जो बोली है, भाषा है, आँखकी भाषा होती है, भौंहोंकी भाषा होती है, होंठोंकी भाषा होती है, हाथकी भाषा होती है, पाँवकी भाषा होती है। यह भी अपने प्रेमको, अपने भावको प्रकाशित करनेकी एक विद्या है, नृत्य। संस्कृतमें नाट्यशास्त्रका एक ग्रन्थ है। 'भावप्रकाशनम्' उसका नाम है। बड़ौदासे प्रकाशित हुआ है। अब तो कम मिलता है पर अभी है, उपलब्ध है। उसमें आँखके द्वारा कैसे भाव प्रकट करना, इसके लिए एक सौ छब्बीस रीतियोंका वर्णन है। आँखसे दुःख प्रकट करना, आँखसे याचना करना, आँखसे प्रेम प्रकट करना। नाम हैं उसमें, संज्ञा दी हुई है। ललित-नेत्र, छलित-नेत्र, वलित-नेत्र, त्वरित-नेत्र, आर्त्त-नेत्र —एकसौ छब्बीस हैं। आँख कैसे बात करती है, इसका वर्णन है।

सस्मितैर्भ्रूविलासैः मुस्कान सहित भौंहोंका संचालन **भज्यन्मध्यैः** कमरकी लचक, **चलकुचवतैः** वक्षस्थलसे आँचलका हट जाना, **कुण्डलैर्गण्डलोलैः** कुण्डल आके कपोलपर चंचलता कर रहे हैं। **स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो**— पसीना हो रहा है, शरीरकी कोई परवाह नहीं, नृत्यमें तन्मय हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो उन्होंने अपने जूड़ेमें फूलोंकी माला बाँध रक्खी थी, डोरी लगा रक्खी थी, वह सब छूटके गिर गयी। **कवररशनाग्रन्थयः**— अग्रन्थयः सारो गाँठ टूट गयी, **कृष्णवध्वः**—शुकदेवजी बोलते हैं यह गोपी परकीया नहीं हैं, श्रीकृष्णकी बधू हैं। **वहन्ति बध्नन्ति**- अपने पतिका वहन भी करती हैं और बन्धन भी करती हैं।

हम कामशास्त्रका वर्णन करने लगें तो ठीक नहीं है ना, वह तो वृन्दावनकी चीज है। रसिकोंके बीचमें वर्णन करते हैं। संसारी लोग तो उसको संसारमें ले जाते हैं। यह तो संसारसे उठानेवाली लीला है। जो संसारी भावनासे ऊपर उठाकर भगवद्भावनामें मग्न कर दे।

गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः

मेघोंकी घटा, एक मेघ, दो मेघ, तीन मेघ, चार मेघ, जब बहुत-से मेघ हो गये तो उसका नाम घटा हो गया—मेघचक्र। और उसमें ये गोपियाँ क्या हैं ? तडित इव—बिजली।

अब केनोपनिषद्में देखो क्या है ?

यदेतद् विद्युतो विद्युत तदा—विद्युतो व्यद्युत्

बिजलियाँ चमक रही हैं, इस प्रकृतिके घनघोर अन्धकारमें, ये एक नहीं अनेक चन्द्रमा, इस निराकार निर्गुण निर्विशेष श्याम मेघमें भावकी बिजलियाँ चमक रही हैं।

मेघचक्रे विरेजुः यह रास।

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।

यह लीलाका प्रयोजन, श्रीचैन्यमहाप्रभुने और वल्लभाचार्यजीने, दोनोंने बताया कि दुनियामें जो डूब रहे हैं, उनको वहाँसे निकालना ! भूल जाओ—दुनिया है नहीं। यह तो मनको चंचलता है, एक मनकी कल्पना है। यदि कल्पना वहाँसे हटी और भगवान्में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लग गयी तो प्रपंचका विस्मरण होगा और भगवान्में आसक्ति हो गयी तो मन उससे तन्मय हो गया। आप उस मनको तो देखिये, कितना शक्तिशाली है, कितना वैराग्यवान् है, कितना आनन्दरूप है, जिसमें भूल गया प्रपंच और परमात्मामें तन्मय हो गये।

यह रास देखकर मनके देवता चन्द्रमा स्तब्ध हो गये। एक-एक वृत्तियाँ ताराकी तरह हो गयीं। कालका पता ही नहीं लगा, कितनी देरमें सारा कल्प बीत गया, सारे मन्वन्तर बीत गये, फिर वहींका वही कल्प आया, वहीका वही मन्वन्तर आया, वहीका वही युग आया। यह कालकी कलना तो सोलहो आने मानसिक है। देशकी कलना और कालकी कलना।

पहले-पहल सृष्टि किस जगह हुई थी? जहाँ मालूम पड़ती है, वहीं हुई थी। कितने दिन पहले हुई थी? जब मालूम हुई थी, तभी हुई। विज्ञान क्षणका प्रकाशक है। विज्ञानको क्षणिक कहना तो दर्शन-शास्त्रका तिरस्कार है। स्वानुभूतिका तिरस्कार है विज्ञानको क्षणिक कहना। विज्ञानको शून्य कहना भी स्वानु-भूतिका तिरस्कार है। ठीक है वह नाचता भी है, वह आकार भी ग्रहण करता है, नाम भी लेता है, पर विज्ञान ज्यों-का-त्यों। यह रास। कालका लोप हो गया। स्थानका लोप हो गया। द्रव्यका लोप हो गया। भँवरे गा रहे हैं, कंगन बज रहे हैं, नुपुर बज रहे हैं। आनन्दामृतका समुद्र, फुहारें उठ रही हैं, नदियाँ बह रही हैं, समुद्र उमड़ रहे हैं, वर्षा हो रही है, आनन्दकी। क्या है कि रास हो रहा है। इसमें न जड़ता है, न इसमें स्थान है, न इसमें काल है, न इसमें व्यक्तिका स्फुरण है। एक विज्ञान आनन्दोल्लसित होकर, वेदान्तियोंमें जैसे ब्रह्ममें विवर्त होता है, कश्मीरियोंमें जैसे आत्मोल्लास होता है, वैसे यह भगवन्मयी लीलाका प्रकाश हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा है। इसमें आनन्दकी धरती, आनन्दका जल, आनन्दका तेज, आनन्दकी आयु।

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१॥
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥२॥

एक एक धूलिकण मधु है, नदियाँ मधु। माद्यतेति अनेन इति मधुः—जिससे मनुष्य आनन्दसे मतवाला हो उठे, उसका नाम मधु। यह मधुकी, रसकी वर्षा हो रही है, यहाँ संसार नहीं है, जो लोग इसमें कामकी शंका करते हैं, वे तो एक वार इसमें डूबकर देख लें, कामका तो यहाँ प्रवेश ही नहीं है। यहाँ न काम है, न भोग है, न कर्ता है, न भोक्ता हैं, न प्रेमी है, न प्रियतम है, न प्रेम है। यह तो रसाद्वैत है। प्रेमाद्वैत है। सिद्धाद्वैत है। इस तरह रासका वर्णन हमारे रसिकोंने किया है।

न आदि न अन्त विहार करैं दोऊ।
लाल प्रियामें भई न विन्हारी।
सदा एकरस आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिजानत।
विहरत जुगल स्वरूप।

दूरे सृष्ट्यादि वार्ता। अरे सृष्टि, स्थिति, प्रलयकी चर्चा मत करो भाई! इस रसब्रह्ममें सृष्टि, स्थिति, प्रलय कहाँ?

ऐसा रासका वर्णन है। हमने तो आपको केवल उसका नमूना जैसे दिखाते हैं ना! यदि इसमें सचमुच डूब जाओ, तो देखो, वस, यह देखो श्याम, यह देखो श्याम, श्याम ही श्याम!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनन्त श्री स्वामी

अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

द्वारा

विरचित

सत्साहित्यके लिए

सम्पर्क

करें

सत्साहित्य - प्रकाशन ट्रस्ट

विपुल

२८/१६ बी० जी० खेर मार्ग, मालावार हिल

बम्बई–४००००६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri